# उत्तर प्रदेश के समाज सुधार आन्दोलन में महिलाओं का योगदान (१९००-१९६४)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, की डी० फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध


प्रस्तुतकर्त्री

मीना सिंह

निर्देशक

प्रो० सी० पी० झा


मध्य कालीन एवम् आधुनिक इतिहास विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद


1993

# विषय सूची

## प्राक्कथन

अपने शोध प्रबन्ध का विषय चुनने में मुझे मध्यकालीन और आधुनिक इतिहास विभाग इलाहाबाद विश्वविघालय में किये गये पिछले दशक के शोध कार्य से प्रेरणा प्राप्त हुई इस विभाग में उत्तर प्रदेश को केन्द्र में रखते हुए बीसवीं शताब्दी में सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक, और सांस्कृतिक पहलुओं पर कई शोध प्रबन्ध पूर्ण किये गये हैं बीसवीं शताब्दी में उत्तर प्रदेश के स्वतन्त्रता आन्दोलन में महिलाओं के योगदान पर और उन्नसवीं बीसवी शताब्दी में इस क्षेत्र में सती प्रथा पर उत्कृष्ट शोध कार्य हुआ हैं इसी से प्रेरित होकर मैंने अपना शोध विषय चुना।

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री और स्वतंत्र भारत के महान निर्माता पण्डित जवाहर लाल नेरू के प्रशासन (1947-1964) को अपने शोध कार्य की सीमा रखा है। इस शोध कार्य में मुझे मध्य कालीन और आधुनिक इतिहास विभाग के प्राध्यापकों से पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है। अपने शोध कार्य के सम्बन्ध में मैं विश्वविद्यालय पुस्तकालय, राजकीय पब्लिक लाइब्रेरी, राजकीय क्रेन्द्रीय पुस्तकालय, सेवा समिति पुस्तकालय, उच्च न्यायालय पुस्तकालय और श्रीरामकृष्ण मिशन पुस्तकालय से सम्बन्धित सामग्री एकत्रित की है। ये सभी पुस्तकालय इलाहाबाद नगर के है। इनके अतिरिक्त मैं राजकीय अभिलेखागार इलाहाबाद,लखनऊ और वाराणसी से अपने विषय पर सामग्री एकत्रित करने गयी।

राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली, राष्ट्रीय पुस्तकालय कलकत्ता, खुदाबख्श लाइब्रेरी पटना और बाराखम्बा रोड दिल्ली पर स्थिति सप्रू हाउस पुस्तकालय इत्यादि से मुझे बहुमुल्य सामग्री एकत्र हुई। लखनऊ विश्वविद्यालय पुस्तकालय से भी लाभदायक सामग्री प्राप्त हुई। मैं इन पुस्तकालयों के कर्मचारियों की हृदय से आभारी हूँ।

मैं अपने परम आदरणीय गुरू, प्रो० सी०पी०झा, की हृदय से कृतज्ञ हूँ जिनके मार्ग दर्शन के बिना यह कार्य असम्भव था, और जिन्होने अपना बहुमुल्य समय और सुझाव देकर इसे पूरा कराया।

मैं अपनी दोस्त नीलम सिंह और चन्दू भाई (भूतपूर्व महामंत्री, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) की तहेदिल आभारी हूँ। इस कार्य सम्पादन में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा।

अन्त में मैं अपना यह शोध प्रबन्ध अपने परमपूज्य दादा जी श्री रामकिशोर सिंह और अपने पिताजी श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह को समर्पित करती हूँ। जिनकी प्रेरणा ने हमें यहाँ तक पहुँचाया।

मीना सिंह
मध्यकालीन आधुनिक इतिहास विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,इलाहाबाद

इलाहाबाद

20.12.1993

## अध्याय - 1

# उन्नीसवीं शताब्दी में समाज सुधार आन्दोलन और उनका प्रभाव

## अध्याय - 1

### उन्नीसवीं शताब्दी में समाज सुधार आन्दोलन

अंग्रेजी शासन के दिनों में भारत में समाज और धर्म सुधार सम्बन्धी जो आन्दोलन शुरू हुए वे भारतीय जनता की उदीयमान राष्ट्रीय चेतना और उनके बीच पश्चिम देश के उदारवादी विचारों के प्रसार के परिणाम थे । इन आन्दोलनो ने धीरे-धीरे सामाजिक और धार्मिक नव निर्माण का कार्यक्रम अपनाया और सारा देश इन आन्दोलनों की चपेट में आया । सामाजिक क्षेत्र में जाति सुधार या जाति प्रथा की समाप्ति, औरतों के लिए समानाधिकार, बाल विवाह के उन्मूलन और विधवा विवाह के समर्थन, सामाजिक और कानूनी असमानता के विरोध आदि प्रश्नों पर आन्दोलन हुए । धार्मिकक क्षेत्र में जो आन्दोलन हुए उन्होने धार्मिक अन्धविश्वास और मूर्ति पूजा, बहु देवतावाद व वेशानुगत पुरोहिती आदि का विरोध किया । इन आन्दोलनो ने कमोवेश मात्र व्यक्ति स्वातंत्र्य, सामाजिक एकता और राष्ट्र वाद के सिद्धान्तों पर जोर दिया और उनके लिए संघर्ष किए ।[1]

भारत में ब्रिटिश शासन के आगमन के बाद यहाॅ जो नया समाज विकसित होता जा रहा था, उसकी जरूरतें पहले पुराने समाज की जरूरतों से भिन्न थीं। उदारवादी पाश्चात्य संस्कृति मे दीक्षित, नए प्रबुद्ध वर्ग ने इन जरूरतों को पहचानना और सुधारवादी आन्दोलन शुरू किए, या सामाजिक संस्थाओं, धार्मिक द्रृष्टिकोण, परम्परागत नैतिक धारणाओं

---

1. ए0 आर0 देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि - पृष्ठ 191

में क्रान्तिकारी परिवर्तन की चेष्टा की, क्योंकि उनके अनुसार ये राष्ट्रीय प्रगति के मार्ग में बाधक थी । उन्हें विश्वास था कि नये समाज का राजनीतिक सांस्कृतिक और आर्थिक विकास व्यक्ति स्वातंत्र्य व्यक्ति की उन्मुक्त अभिव्यक्ति के लिए अवसर सामाजिक समानता आदि उदारवादी सिद्धान्तों के आधार पर ही संभव है। इन सुधार आन्दोलनों में भारतीय जनता के जागरूक और प्रगतिशील वर्गो की नई सामाजिक आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में पुराने धार्मिक दृष्टिकोणों के परिमार्जन और सामाजिक संस्थाओं के प्रजातांत्रिकरण की इच्छा का प्रतिफलनहुआ ।[1]

भारतीय समाज सुधारकों की यह शिकायत थी कि समाज सुधार तेजी से नही हो रहा था, क्योंकि ब्रिटिश सरकार उसे पूरी मदद नही कर रही थी । उनका कहना था कि सरकार सामाजिक प्रतिक्रिया वाद और अन्याय के गढ़ को ध्वस्त करने में उनकी मदद नही कर रही थी । समाज सुधार सम्बन्धी विधेयक पारित होने की गति बड़ी धीमी थी और सरकार जो थोड़े बहुत काम कर रही थी देश के प्रगतिशील विचारों के दबाव में कर रही थी । उन्नीसवीं सदी क पूर्वार्द्ध में ब्रिटिश शासकों ने स्वयं ही दास व्यवस्था, सती प्रथा और बाल मृत्यु जैसी कुरीतियों के उन्मूलन प्रगतिशील काम किए थे । लेकिन बाद में शासक वर्ग के दृष्टि कोण में परिवर्तन आ गये । एज आफ कन्सेट एक्ट 1891 में पास हुआ, लेकिन कई दशकों के बाद यह पहला सरकारी सुधार कार्य हुआ था । इन सब

---

1. ए0 आर0 देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 192

कारणों से भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं के इस विचार को बल मिला कि राजनीतिक सत्ता प्राप्त करना आवश्यक है, जिससे लोग सामाजिक और धार्मिक सुधार की गति को तीव्र कर सकें ।

**सुधार आन्दोलन में जनतांत्रिक भाव**

शुरू से ही भारतीय राष्ट्रवाद की प्रगति जन तांत्रिक थी । समाज और धर्म सुधार के आन्दोलनों में भी यह प्रवृत्ति विद्यमान रही । कमोवेश मात्रा में इन आन्दोलनों ने सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में सामाजिक विशेषाधिकार को समाप्त करने, देश की सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं के जनतंत्रीकरण और राष्ट्रीय एकता के रास्ते में लाये गये आकड़ो जैसे जाति आदि अनिष्ट कर संस्थाओं को सुधारने या खतम करने के प्रयास किए । वे जाति और लिंग के परे सबकों समान अधिकार दिलवाना चाहते हैं ।[1]

सुधारकों का कहना था कि भारतीय जनता की राजनीतिक स्वतंत्रता और सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रगति और राष्ट्रीय एकता के लिए यह आवश्यक था कि सामाजिक सम्बन्धों संस्थाओं का जन तंत्रीकरण हो ।

राष्ट्रीय जनतांत्रिक जागरण का राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर असर पड़ा ।

---

1. ए0 आर0 देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 192

राजनीति में, उसके चलते प्रशासनिक सुधार, स्वायत्त शासन, होम रूल, डोमिनियन स्टेट्स और अंततः स्वाधीनता के संघर्ष का जन्म हुआ । सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में भारतीय राष्ट्रवाद ने व्यक्ति स्वातंत्र्य समानता और आत्म निर्णय के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया । इनके जन्म और जन्म पर आधारित विशेषाधिकार पर, जिनसे जाति जैसी संस्थाओं का संपोषण हुआ था और जो अजनतांत्रिक सिद्धान्त थे आघात किया। इस तरह भारतीय राष्ट्रवाद सारतः जनतांत्रिक था और मध्ययुगीन सिद्धान्तों और विदेशी शासन के विरुद्ध संघर्षरत रहा । समाज और धर्म सुधार के आन्दोलन भारत के राष्ट्रीय जागरण के सूचक थे । उनका उद्देश्य था मध्ययुगीन सामाजिक संरचना और धार्मिक दृष्टिकोण का कमोवेश जनतांत्रिक अर्थात व्यक्ति स्वातंत्र्य और मानव एकता के सिद्धान्तों के आधार पर परिशोधन ।[1]

**राजा राममोहन राय एवं ब्रह्म समाज**

19वीं शताब्दी में कार्य सुधार आन्दोलन का प्रारम्भ राजा राम मोहन राय ने किया । राजा राम मोहन राय (1774 - 1833) भारत में आधुनिक युग के प्रवर्तक माने जाते हैं उन्होने ही उन सारी प्रवृत्तियों को प्रारम्भ किया जिनसे भारत में आधुनिकता की नींव पड़ी राजा राम मोहन राय, संस्कृत, फारसी एवं अंग्रेजी के प्रकाण्ड विद्वान थे उन्होने ईसाई धर्म और इस्लाम के साथ-साथ हिन्दू धर्म का बहुत गहराई से

---

1. ए0 आर0 देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ - 192

अध्ययन किया । उन्होने इस बात को महसूस किया कि वर्तमान हिन्दू धर्म सामाजिक बुराइयॉ एवं धार्मिक अन्धविश्वासों से भर गया है क्योंकि वेदों उपनिषदों में निहित वास्तविक आदर्शो को भुला दिया गया अपने धार्मिक अध्ययन के आधार पर राजा राम मोहन राय इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि निराकार ब्रह्म की उपासना ही वास्तविक उपासना है मूर्ति पूजा एवं अनेक देवी- देवताओं की उपासना अनावश्य और हानिकारक है । इसलिए उन्होने हिन्दू धर्म में वेदों एवं उपनिषदों के आधार पर एकेश्वर वाद की स्थापना करने का निश्चय किया ।[1]

इस उद्देश्य से उन्होंने कलकत्ते में 'आत्मीय सभा' की स्थापना की । इसकी बैठकों में राजा राममोहन राय अध्यात्मिक विषयों पर विचार विमर्श करते थे । 1828 ई0 में उन्होने 'ब्रहम समाज' की स्थापना की । 20 अगस्त, 1828 ई0 में ब्रहम समाज की पहली बैठक हुई । ब्रहम समाज का उद्देश्य निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, अनादि, अनन्त ब्रहम की उपासना था। प्रत्येक शनिवार को सायंकाल ब्रहम-समाज की बैठक होती थी । इन बैठकों में वेद की रचनाओं का पहले संस्कृत में, बाद में बंगाली में पाठ होता था । उपनिषदों के कुछ मंत्रों का भी पाठ किया जाता था। कभी-कभी राजा राम मोहन राय द्वारा रचित कविताओं का भी पाठ होता था । जनवरी 1830 में ब्रहम समाज के सदस्यों ने चंदा इकट्ठा करके एक मकान खरीदा, जहॉ ब्रहम समाज का मुख्य कार्यालय

---

1. भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास (1857-1947) डा0 सुशील माधव पाठक.

स्थापित किया गया । इस भवन के न्यास पत्र में कहा गया कि उस भवन का प्रयोग केवल निराकार ब्रहम की स्थापना के लिए किया जाय । उस भवन में ईश्वर की उपासना किसी साम्प्रदायिक भावना से न की जाय । उस भवन के न तो किसी मूर्ति या तस्वीर की उपासना की जाय न तो किसी पशु की बलि दी जाय ।[1]

राजा राम मोहन राय आधुनिक भारत के पहले हिन्दू विचारक थे जिन्होने हिन्दू धर्म में मूर्ति पूजा , बलि प्रथा, अनेक देवी- देवताओं की उपासना के विरूद्ध आवाज उठाई और हिन्दू धर्म में विशुद्ध एवं भक्ति-भावना से ओत-प्रोत एकेश्वरवाद को पुनः प्रतिष्ठित करने का सच्चा प्रयास किया । राजा राम मोहन राय की प्रेरणा का स्रोत वेदों एवं उपनिषदों में निहित अध्यात्मिक ज्ञान का गंभीर अध्ययन था । इस्लाम एवं ईसाई धर्म के गहरे अध्ययन ने उन्हे हिन्दू धर्म के मूल स्रोतो एवं आदर्शो की गवेषणा करने के लिए बाध्य किया । उनके अध्यात्मिक अध्ययन एवं अनुभव ने उन्हे हिन्दू धर्म के मूल आदर्शो को पुनर्जीवित करने के लिए बाध्य किया । इस दृष्टि से राजा राम मोहन राय आधुनिक भारत के निर्माताओं में मूर्धन्य माने जाते हैं । उनका ब्रहम समाज भारतीय आत्मा के जागरण का प्रतीक है ।[2]

---

1. जे0 एन0 फर्कुद्दर, मार्डन मूवमेन्ट्स इन इंडिया (दिल्ली : मुंशीराम मनोहर लाल, 1967) पृ0 - 35
2. डा0 सुशील माधव पाठक , भारत स्वाधीनता संग्राम का इतिहास 1857-1947, पृष्ठ - 34

राजा राम मोहन राय का संवेदनशील हृदय हिन्दू समाज की बुराइयों के प्रति जागरूक था । उन्होने अपने घर में ही सती प्रथा की बुराई का ज्वलंत उदाहरण देखा था उनकी भौजाई को इनकी आँखों के सामने जबरदस्ती सती बना दिया गया था । उस हृदयविदारक हृदय ने उनके मर्म स्थल पर ऐसी गहरी चोट पहुँचाई थी कि उन्होने सती-प्रथा को नाश करने का ब्रत ले लिया । और उनके अथक प्रयत्न से 1829 में सती प्रथा को लार्ड वेंटिंग ने अवैध करार दिया । राजा राम मोहन राय ने समाज की अन्य बुराइयों के विरुद्ध भी संघर्ष किया । राजा राम मोहन राय ने समाज की अन्य बुराइयों के विरुद्ध भी संघर्ष किया । राजा राम मोहन राय के बाद देवेन्द्र नाथ ठाकुर (1817-1905) ब्रहम समाज के नेता हुए । देवेन्द्र नाथ ठाकुर ने ब्रहम समाज को बंगाल में लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । उन्होने अपने उपदेशों एवं लेखों के द्वारा ब्रहम समाज के सिद्धान्तों का प्रचार किया । उन्होने भी रामा राम मोहन राय की तरह उपनिषदों को ब्रहम समाज की आधारशिला माना और इस बात पर जोर दिया कि हिन्दू धर्म एक पवित्र अध्यात्मिक दर्शन है । उन्होने मूर्तिपूजा का विरोध किया और निराकार ब्रहम की भक्ति पर जोर दिया । देवेन्द्र नाथ ठाकुर ने अपने प्रयत्नों से कलकत्ते में अनेक युवकों ईसाई बनने से रोका एवं ब्रहम समाज को ऐसा रूप प्रदान किया कि किसी बुद्धिजीवी को भी ब्रहम समाज के सिद्धान्तो से पूर्ण अध्यात्मिक शान्ति प्राप्त हो सके[1] ।

---

1. जे0 एन0 फर्कुदर, नार्डन रिलीजस मूवमेन्ट्स इन इंडिया, पृ0 39-40

1857 से देवन्द्र नाथ ठाकुर के प्रमुख सहयोगी के रूप में केसवचन्द्र सेन ( (1837-1884) ने उनके कार्यो में भाग लेना शुरू किया और ये शीघ्र ही समाज के नेता एवं देवेन्द्र नाथ ठाकुर के प्रमुख सहयोगी बन गये ।

केशवचन्द्र सेन ने भी बहुत परिश्रम से ब्रहम समाज को लोकप्रिय बनाया । 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में ब्रहम-समाज पूर्वी भारत में समाज सुधार की एक प्रमुख संस्था वन गया । इसकी माध्यम से नई चेतना और नये विचारों का प्रसार होने लगा । ब्रहम समाज ने उपनिषदों के अध्यात्मवाद के आधार पर एकेश्वरवाद को प्रतिष्ठित किया । जात, पॉत, छुआ-छूत, बाल विवाह एवं सती प्रथा जैसी बुराइयो का उन्मूलन करने में महत्वपूर्ण भूमि का अदा की । ब्रहम समाज ने स्त्रियॉ के उत्थान के लिए महत्वपूर्ण प्रयत्न किये । स्त्रियों की शिक्षा में ब्रहम समाज ने महत्वपूर्ण योगदान दिया । ब्रहम समाज ने जिस सामाजिक चेतना को जन्म दिया, वह राष्ट्रीयता के विकास में बहुत सहायक सिद्ध हुई ।[1]

**प्रार्थना समाज**

महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज ने समाज सुधार के क्षेत्र में ठीक वैसी भूमिका अदा की जैसी पूर्वी क्षेत्र में ब्रहम समाज ने । 1868 में प्रार्थना समाज की स्थापना बम्बई

---

1. डा0 सुशील माधव पाठक, भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास 1857-1947 पृ0 35

में हुई । प्रार्थना समाज के प्रमुख संस्थापक डा0 आत्माराम पाण्डुरंग (1823-1898) थे । इसके अलावा इसके अन्य नेताओं में महादेव गोविन्द राणाडे (1841- 1901) एवं दादोबा पाण्डुरंग, भास्कर पाण्डुरंग, राम बाल कृष्ण, एम0 एन0 परमानन्द, वी0 ए0 मोदक, बी0 एम0 वागले, एवं सर राम कृष्ण भंडारकर आदि । प्रार्थना समाज मुख्य रूप से मराठी संत कवियों की भक्तिपूर्ण रचनाओं से प्रभावित था तथा हिन्दू-धर्म-ग्रन्थ भी इसकी प्रेरणा स्रोत थे । प्रार्थना समाज ने भी ईश्वर कीभक्ति पर जोर दिया एवं समाज सुधार को अपने कार्यक्रम में मुख्य स्थान दिया । प्रार्थना समाज ने जात-पॉत एवं बाल-विवाह को समाप्त करने की कोशिश की तथा हिन्दू समाज में स्त्री-शिक्षा के प्रसार एवं विधवा विवाह को प्रोत्साहित करने का भरसक प्रयत्न किया ।[1] प्रार्थना समाज के प्रयत्नों से पश्चिमी भारत में नई चेतना फैली जो राष्ट्रीय भावना के उदय में बहुत सहायक सिद्ध हुई

**आर्य समाज**

आर्य समाज की स्थापना स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 1875 में बम्बई में की । स्वामी दयानन्द सरस्वती भाषा तथा मुख्यतः वेदों के प्रकाण्ड विद्वान थे। उनका जन्म टंकारा में 1824 में हुआ था तथा उनका निधन 1883 में हुआ था उन्होने किशोरावस्था में सन्यास ग्रहण कर लिया था और मथुरा में एक अन्धे स्वामी विरजानन्द से वेदों की शिक्षा प्राप्त कीथी । विरजानन्द ने गुरू दक्षिणा रूप में दयानन्द से यह वचन

---

1. जे0 एन0 फर्कुहर, मार्डन रिलीजस मूवमेन्ट्स इन इंडिया, पृ0 78-80

लिया था कि वे अपना जीवन वैदिक धर्म के पुनरुद्धार एवं हिन्दू धर्म में फैले अन्धविश्वास एवं पाखण्ड को दूर करने में बितायेंगे । इसलिए स्वामी दयानन्द ने वैदिक धर्म की स्थापना के उद्देश्य से आर्य समाज की स्थापना की । आर्य समाज वैदिक धर्म के आदर्शों के आधार पर एकेश्वरवाद में विश्वास करता है और स्वामी दयानन्द के अनुसार वेदों को समस्त ज्ञान का स्रोत मानता है आर्य समाज ने भी मूर्ति पूजा का विरोध किया एवं पौराणिक हिन्दू धर्म द्वारा प्रचारित बहुदेव वाद एवं अवतारवाद का विरोध किया । यह वैदिक पद्धति के आधार पर गायत्री मंत्र एवं अग्निहोत्र के द्वारा ईश्वर पूजन की विधि को उपयुक्त बतलाता है ।[1]

समाज सुधार के क्षेत्रों में आर्य समाज ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । इसने जॉत-पात, बाल विवाह सती प्रथा एवं छुआ-छूत का खुलकर विरोध किया । विधवा विवाह एवं स्त्री शिक्षा के प्रसार के लिए प्रशंसनीय कार्य किया । छुआ-छूत के विरुद्ध संघर्ष करके इसके बहुत से अस्पृश्य कहे जाने वाले लोगों को मुसलमान या ईसाई होने से बचाया । आर्य समाज के तत्वाधान में अनेक स्कूलों एवं कालेजों की स्थापना हुई जिसे दयानन्द एग्लो-वैदिक कालेज' कहा जाता है आर्य समाज ने वेदों के अध्ययन-अध्यापन के लिए कई महत्वपूर्ण संस्थाओं के स्थापित किया । आर्य समाज में हिन्दू धर्म में उन व्यक्तियों के पुनः प्रवेश के लिए ( जो ईसाई एवं मुसलमान बन गये थे ')। 'शुद्धि आन्दोलन चलाया । आर्य समाज आन्दोलन पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश महाराष्ट्र एवं गुजरात में बहुत लोकप्रिय हुआ । आर्य-समाज के सिद्धान्तों में

---

1 लाला लाजपत राय, हिस्ट्री आफ दि आर्य समाज, पृ0 25

में प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति गौरव की भावना पर जोर दिया जाता था । हिन्दू समाज को पुनः शक्तिशाली बनाने के लिए संगठन एवं एकता पर बल दिया जाता था । इसलिए आर्य समाज आन्दोलन राष्ट्रीय भावना के उदय एवं विकास में बहुत सहायक हुआ ।[1]

**थियोसोफिकल आन्दोलन**

भारत में थियोसेफिकल सोसायटी को लोकप्रिय बनाने वाली श्रीमती एनी वेसेन्ट थी । श्रीमती एनी वेसेन्ट भारत में 1893 में आई उनके प्रयत्नों से यह आन्दोलन भारत में अत्यन्त लोकप्रिय हुआ । यों थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना 1875 में न्यूयार्क में कर्नल ऑलकॉट एवं मैडम ब्लेवाटस्की द्वारा हुई । श्रीमती वेसेन्ट मैडम ब्लेवाटस्की की शिष्या थीं । श्रीमती ऐनी वेसेन्ट का जन्म 1847 में लन्दन में हुआ था और मृत्यु 1933 में हुई । 1893 में भारत आने के बाद श्रीमती ऐनी वेसेन्ट ने अपनी कार्यकुशलता एवं सूझबूझ से थियोसोफिकल आन्दोलन को अत्यनत लोकप्रिय बना दिया। श्रीमती बेसेन्ट वक्तृत्व कला में अत्यनत निपुण थी और उन्होने हिन्दू धर्म एवं बौद्ध धर्म का गहरा अध्ययन किया था। थियोसोफिकल के सिद्धान्त हिन्दू धर्म का पूर्ण रूप से समर्थन करते थे । इसलिए पढ़-लिखे हिन्दुओं में यह आन्दोलन काफी लोकप्रिय हुआ । श्रीमती बेसेन्ट ने 1905 डा0 भगवानदास के साथ भगवद्गीता का अंग्रेजी में अनुवाद

---

1. डा0 सुशील माधव पाठक, भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास (1857-1947) पृ0 36-37

किया । उन्होने 1898 में वाराणसी में 'सेन्ट्रल हिन्दू स्कालेज' की स्थापना की । श्रीमती वेसेन्ट ने राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया ।[1] इस प्रकार थियोसोफिकल आन्दोलन राष्ट्रीय चेतना स्के विकास में सहायक सिद्ध हुआ ।

**रामकृष्ण म0 एवं मिशन**

राम कृष्ण म0 या मिशन की स्थापना स्वामी विवेकानन्द ने 1897 में की । स्वामी विवेकानन्द स्वामी रामकृष्ण परमहंस (1836-1886) के शिष्य थे । राम कृष्ण परमहंस कलकत्ते के दक्षिणेश्वर मंदिर में काली के पुजारी थे। अपनी भक्ति एवं अध्यात्मिक साधना से उन्होने कलकत्ते एवं बंगाल के शिक्षित हिन्दू समुदाय को शक्तिशाली ढंग से प्रभावित किया । स्वामी विवेकानन्द जिनका वास्तविक नाम नरेन्द्र नाथ दत्त का, कलकत्ते के सम्पन्न एवं सुसंस्कृत परिवार में 1863 में पैदा हुए थे । कलकत्ता विश्वविद्यालय से वी0 ए0 पास करने के बाद विवेकानन्दा ने राम कृष्ण की प्रसिद्धि से आकृष्ठ होकर उनसे मुलाकात की और एक दो मुलाकातों में दोनो एक दूसरे के निकट आ गये । शीघ्र ही राम कृष्ण परमहंस ने विवेकानन्द को अपना प्रिय शिष्य बना लिया । 1886 में रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु के पश्चात स्वामी विवेकानन्द ने संयास ले लिया और रामकृष्ण परमहंस के सिद्धान्तों के प्रचार में अपना सारा जीवन व्यतीत एवं

---

1. अय्यरसी0 पी0 रामास्वामी एनी वेसेन्ट (नई दिल्ली) पव्लिकेशन्स डिवीजन, 1963), पृ0 - 52-81

समर्पित कर दिया ।[1]

1886 के बाद स्वामी विवेकानन्द ने अध्यात्मिक साधना के सिलसिले में भारत भ्रमण प्रारम्भ किया और घूमते-घूमते मद्रास पहुँचे । मद्रास में ही उन्हें खबर मिली कि 1893 में विश्व-धर्म-सम्मेलन अथवा 'पार्लियामेण्ट ऑफ रिलीजन्स' का पहला अधिवेशन संयुक्त राज्य अमेरिका के शिकांगो नगर में होने जा रहा है। विवेकानन्द के मित्रों ने सलाह दी कि वे हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि के रूप में शिकागो के अधिवेशन में भाग लें । शीघ्र ही चन्दा इकट्ठा किया गया और विवेकानन्द जापान एवं प्रशांत महासागर के मार्ग से शिकांगो पहुँचे । वहाँ उन्होने पार्लियामेन्ट ऑफ रिलीजन्स में हिन्दू धर्म पर भाषण दिया एवं अपने व्यक्तित्व एवं वत्कृत्व-कला के आधार पर श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध कर लिया ।[2]

विवेकानन्द ने अपने व्यक्तित्व एवं ओजस्वी भाषण से हिन्दू धर्म की प्रतिष्ठा में चार- चाँद लगा दिये और बहुत से अमेरिकी स्त्री-पुरुष उनके शिष्य बन गये ।

विवेकानन्द इग्लैण्ड होते हुए अपनी शिष्य मण्डली के साथ लगभग दो वर्षो के बाद भारत लौटे, तब उनका अभूतपूर्व स्वागत हुआ । उन्होने शिक्षित हिन्दू समुदाय

---

1. रोम्याँ रोला, दी लाइफ आफ रामकृष्ण (कलकत्ता- अद्वैत आश्रम, 1974) पृ0 222 - 247
2. रोम्या रोलाँ, दि लाइफ विवेकानन्द (कलकत्ता अद्वैत आश्रम 1975)पृ075

के मन में हिन्दू धर्म के प्रति आदर एवं आस्था को बढ़ा दिया और लोगो के मन में भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम बढ़ाया । उनके अभियान ने यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दू धर्म एक प्राचीन एवं प्रतिष्ठित धर्म है तथा उसने मानव जाति के मार्गदर्शन की शक्ति है विवेकानन्द का व्यक्तित्व, भारतीय नवजागरण में बहुत कारगर सिद्ध हुआ । इसलिए जवाहर लाल नेहरू ने विवेकानन्द के विषय में लिखा है ।

'विवेकानन्द का व्यक्तित्व निराश एवं निरूत्साहित हिन्दू जाति के लिए एक स्फूर्ति बर्द्धक औषधि सिद्ध हुआ । उन्होने हिन्दू जाति को स्वावलम्बन का सबक दिया एवं इतिहास श्से प्रेम करने का पाठ पढ़ाया ।[1]

विवेकानन्द ने अपने आदर्शो को क्रियान्वित करने के लिए राम कृष्ण मठ और मिशन की स्थापना की । रामकृष्ण मठ और मिशन ने भारतीयों के अध्यात्मिक उत्थान एवं समाज सेवा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका अदा को । प्राकृतिक विपत्तियों के समय राम कृष्ण मिशन के सदस्य सेवा कार्य में जुट जाते थे । इस मिशन ने कलकत्ता, वाराणसी, मद्रास, अल्मोड़ा, आदि स्थानों में जन सेवा के लिए अस्पताल, स्कूल और कालेज स्थापित किये । 1902 में स्वामी विवेकानन्द की मृत्यु के समय तक इस मिशन का संगठन इतना सुदृढ़ हो चुका था कि इसने राष्ट्रीय जीवन में अपना विशिष्ट स्थान बना

---

1. जवाहर लाल नेहरू, डिस्कवरी आफ इंडिया, पृ0 253.

लिया था । स्वामी विवेकानन्द ने न केवल अध्यात्मिक उत्थान पर जोर दिया, बल्कि राष्ट्रीय जीवन को सशक्त बनाने पर जोर दिया । उन्होने भारतीय जनता को देश प्रेम, अभय एवं ज्ञान विज्ञान के द्वारा शक्तिशाली बनने का उपदेश दिया । उन्होने भारतीय अध्यात्मक तथा पश्चिमी ज्ञान के रूप में परिणम करना चाहा । इसलिए इस बात में कोई संदेह नही कि स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय राष्ट्रीयता के उत्थान में अविस्मरणीय योगदान दिया ।

**अस्पृश्यता विरोधी आन्दोलन**

अस्पृश्यता हिन्दू समाज का एक महान कलंक है भारतीय समाज के लिए यह एक अभिशाप है हिन्दू समाज स्पृश्य और अस्पृश्य दो भागों में विभाजित है यह विभाजन अत्यन्त असंगत है । भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत समाज में एक ऐसा समुदाय भी विद्यमान है जिसके स्पर्श या जिसकी छाया मात्र से हिन्दू अपवित्र मान लिये जाते हैं । [1]

अस्पृश्यता या छुआ-छूत सामाजिक असमानता का सबसे बड़ा उदाहरण है । इस समुदाय को न केवल अस्पृश्य ही घोषित किया गया है वरन उसे मूलाधिकारों से वंचित

---

1. डा0 एस0 के पारिख एवं ए0 सी0 दहीभाते - पृ0 127 भारत की सामाजिक आर्थिक संरचना एवं संस्कृत के तत्व ।

कर दिया गया है । वे आराधना स्थलों और सामाजिक स्थानों में प्रवेश नही पा सकते हैं तालाबों और कुँओं का उपयोग नही कर सकते हैं । शिक्षा के अधिकार से उन्हें वंचित कर दिया गया तथा उनके पाठशालाओं और स्कूलों में प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया उनके निवास गाँवों और कस्बों से दूर हुआ करते थे तथा नगरों से पृथक हुआ करते थे।[1]

प्रतिबन्धों के कारण उनका नैतिक, अध्यात्मिक और नैतिक अधःपतन हो गया है उनकी दशा गुलामों और अर्द्धदासों के समान है । वे असभ्य और बर्बर समझे जाते हैं। अन्धकार और पतन के गर्त में इतना डूब गये है कि उन्हें आशा की किरण कहीं भी नजर नही आती है। समाज में उन्हें बड़ी घृणा की दृष्टि से देखा जाता था । उनमें आत्मसम्मान और आत्मगौरव की भावना लुप्त हो गई है ।

**अछूतोद्धार के लिए प्रयास**

अछूतो की दशा सुधारने के लिए भिन्न-भिन्न समयों में भिन्न - भिन्न प्रयत्न किये । इसके विरुद्ध प्राचीन काल से ही अनेक आन्दोलनों उठते रहे । प्राचीन काल में सर्व प्रथम गौतम बुद्ध तथा महावीर स्वामी ने जाति व्यवस्था का विरोध किया, गौतम बुद्ध का कहना है कि कोई जन्म से ब्राहमण या शूद्र नही होता है ।

---

1. डा0 एस0 के पारिख एवं ए0 सी0 दहीभाते, पृ0 128 भारत की सामाजिक आर्थिक संरचना एवं संसकृति के तत्व ।

आदमी कर्म से ब्राहमण या शूद्र होता है । 14वीं शताब्दी में स्वामी रामानन्द ने जाति व्यवस्था का विरोध किया । उनके बाद कबीर, नानक, नका राम, एकनाथ नामदेव आदि सन्तों ने भी अस्पृश्यता का विरोध किया। परन्तु अस्पृश्यता की जड़ इतनी गहरी है कि अभी तक यह प्रथा भारतीय समाज में विघमान है। 19वी शताब्दी के अन्तिम दशक में अछूतोंद्वार के लिये जातीय आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ । इसके दो पहलू थे इसका प्रथम पहलू था अधिक से अधिक सरकारी नौकरी प्राप्त करना। 'संस्कृतिकरण की प्रक्रिया' से तात्पर्य है कि भिन्न वर्ग के लोगों ने अपने अनेक रीति-रिवाजों का परित्याग कर दिया और उच्च जाति के अनेक रीति-रिवाजों कोअपना लिया । उन्होने अपने सामाजिक और आर्थिक स्तर को उठाने का प्रयास किया । इनमें समाज में उच्च जातियोंके समकक्ष स्थान प्रापत करनेके लिये प्रतिस्पर्धा की भावनाजागृत हुई । अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा और सम्मान की वृद्धि के लिये उन्होने अधिकाधिक सरकारी नौकरी प्राप्त करनेकी कोशिश की । सरकारी नौकरी समाज में मान और सम्मान का प्रतीक बन चुकी थी । राजनीतिक लाभ के लिये विभिन्न जातियो के नेताओं ने भी उन्हें संगठित किया उनकी जातीय भावनाओं को उद्दीप्त किया तथा उन्हें अधिकाधिक सरकारी नौकरियाँ प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया। हिन्दुओं में बढ़ती हुई राष्ट्रीय भावना के वेग को रोकने के लिए आवश्यक था कि हिन्दुओं की विभिनन जातियो को एक दूसरे के विरूद्ध खड़ा किया जाय । फलस्वरूप भारत के विभिन्न प्रदेशों में जातीय चेतना का प्रादुर्भाव हुआ जिसने जातीय संघर्षों को जन्म दिया।[1]

---

1 डॉ0 एस.के.पारिख एवं ए.सी. दहीमाते - भारत की सामाजिक आर्थिक संरचना एवं संस्कृति के तत्व, पृष्ठ 129.

**अछूतोद्धार के लिये प्रारम्भिक प्रयास**

19वीं शताब्दी में ब्रहम समाज प्रार्थना समाज आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसाफिकल समाज तथा भारत सेवक समाज ने अछूतोंद्धार के लिये प्रयास किया । इज युग के समाज सुधारकों ने जाति व्यवस्था पर कठोर प्रदार किया और दलित वर्ग के उत्थान के लिये अनेक शैक्षणिक संस्थायें स्थापित की। उन्होनें धर्म का द्वार सभभ् जातियों के किये बिना भेद-भाव के खोल दिया। ब्रहम समाज के संस्थापन राजा राम मोहन राय (1774-1833) ने जन्म पर आधारित जाति प्रथा तथा छुआ छूत का विरोध किया। इस सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण कार्यआर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द्र सरस्वती (1824-1883) ने किया । उन्होने घोषित किया किजन्म से कोई अछूत नहीं होता। अछूत तो अछूत रोगों से होता है । स्वामी जी के सम्बन्ध में गांधी जी ने लिखा है, 'स्वामी दयानन्द ने जो बहुत सी सम्पत्ति उत्तराधिकार में हमारे लिये छोड़ी' उनमें उनकी अस्पृश्यता के विरूद्ध स्पष्ट घोषणा निःसन्देह दी एक बहुमूल्य निधिहै[1]

स्वामी जी का कथन था कि गुण और वर्ण के आधार पर निम्न जाति के लोगों को भी ब्राहमण, क्षत्रिय और वैश्य बनने का अधिकार है। इस प्रकार उन्होने जाति सम्बन्धी परम्परागत विचारों को अस्वीकार कर दिया। रामकृष्ण मिशन के संस्थापक स्वामी विवेकानन्द्र (1873-1902) ने भी जाति व्यवस्था और छुआ-छूत की भावना का विरोध

---

1. डा0 एस0के0 पारिख एवं ए.सी. दहीमाते, भारत की सामाजिक,आर्थिक, संरचना के तत्व, पृष्ठ 129.

किया । उन्होने स्पष्टतः घोषित किया कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के अध्यात्मिक उन्नति करने का अवसर मिलना चाहिये क्योंकि ईश्वर की दृष्टि में सब मनुष्य समान है । रामकृष्ण मिशन का मुख्य उद्देश्य गरीबों और दलितों की सेवाकरना था।[1] अछूतों के लिये राष्ट्रीय सामाजिक संगठन द्वारा प्रयास -

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद राष्ट्रवादियों ने समाज सुधार के लिये 1887 में नेशनल सोशल कांन्फेस की स्थापना की। राष्ट्रीय कांग्रेस के समान इनके अधिवेशन भी विभिन्न नगरों में संगठित किये गये और इन अधिवेशनों ने समाज सुधार की समस्याओं पर विचार विमर्श किया । 1887 और 1901 के बीच न्यायमूर्ति रानाडे और 1901 से 1020 के बीच चन्दावरकर ने राष्ट्रीय सामाजिक संगठन का नेतृत्व किया। अपने नवें अधिवेशन संगठन में घोषित किया कि प्रत्येक राष्ट्रवादी भारतीय का कर्तव्य है कि वह अछूतों के उत्थान के लिये प्रयासकरें। 1897 में राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी अछूतोंद्वार पर विशेष जोर दिया। कांग्रेस के अध्यक्ष शंकरन्न नैयर ने जाति पाति के बन्धनों के विरूद्ध आवाज उठायी। अपने 12वें अधिवेशन में संगठन ने महाराष्ट्र के प्रार्थना समाज द्वारा अछूतोद्वार के लिये किये गये प्रयासों की प्रशंसा की और उसे अपना पूर्ण समर्थन प्रदान किया। 1899 में संगठन ने मद्रास के जातीय संघर्श की भर्त्सना की और दलित वर्ग की शिक्षा और उसके उत्थान पर विशेष जो दिया। इस प्रकार राष्ट्रीय समाजिक संगठन

---

1. डा0 एस0के0 पारिख एवं ए0सी0दहीमाते भारत की सामाजिक, आर्थिक, सरंचना संस्कृत के तत्व

विभिन्न संस्थाओं और एजेन्सियों के माध्यम से अछूतों के उद्धार के लिये प्रयास करती रही।[1]

ईसाई मिशनरियों ने भी अछूतोंद्धार के लिए प्रंशसनीय कार्य किया। 1906 में 'अखिल भारतीय समाज'की स्थापना हुई । इस संस्था ने अछूतों के उद्धार के लिए बहुत प्रयत्न किया। 1908 में बंगाल के दलित वर्ग मिशन की शरण की स्थापना हुई । इसने दलित वर्ग में शिक्षा प्रसार के लिये अनेक कार्य किये । उत्तर प्रदेश में आर्य समाजियों ने चमार और डोम जाति के उत्थान के लिए प्रयास किया। पूना के समाज सुधारक ज्योति बा. फुले, बंगाल के शारीपद बन्द्योपाध्याय, बम्बई के अमृत वि. ठक्कर ने दलितों के उद्धार के लिये अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पित कर दिया।[2]

## स्त्री उद्धार के लिये आन्दोलन

### 19वीं शताब्दी में स्त्रियाँ की दशा

19वीं शताब्दी में स्त्रियाँ की दशा अत्यन्त दयनीय की । बाल विवाह, सती प्रथा, पर्दापथा, बहुविवाह तथा दहेज प्रथा प्रचलित थी, समाज में उन्हें पुरूषों के समकक्ष स्थान नही प्राप्त का वे उपभोग की वस्तु समझी जाती थीं, उनकी शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं थी, वे पूर्णतः पुरूषो पर निर्भर करती थी, और उन्हें पूर्ण समर्पण का जीवन व्यतीत करना

1. इन्डियन सोशल रिफार्मर नवम्बर 1930, पृष्ठ 1′ . .
2. डा0.एस.के.पारिख एवं ए.पी.दहीयाते-पृष्ठ135 भारत की सामाजिक,आर्थिक सरचना एवं संस्कृत के तत्व।

पड़ता था। बाल्यकाल में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में उन्हें पुत्र के संरक्षण में जीवन व्यतीत करना पड़ता था।[1]

समाज में विधवा विवाह पर प्रतिबन्ध का हिन्दू स्त्री तलाक नही के सकती थभ। दक्षिण भारत में देवदासी प्रथा प्रचलित थी । मुस्लिम समाज में भी स्त्रियो की दशा अच्छी न थी। किन्तु हिन्दू स्त्रियाँ की अपेक्षा वेहता की। उन्हें अपने पिता की सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त था। मुसलमानों में भी बहु-विवाह और पर्दा पथा प्रचलित थी। उन्हें भी समाज में पुरूषो के समान अधिकार नही प्राप्त था। लगभग सात शताब्दियो के विदेशी शासन के कारण भारतीयों का भौनिक अध्यात्मिक और नैतिक पतन हो गया था। इसका प्रभाव स्त्रियों पर पड़ना स्वाभाविक था।[2]

**19वीं शताब्दी में स्त्री उद्धार के लिये प्रयास**

19वीं शताब्दी में सभी समाज सुधारकों का ध्यान स्त्री शिक्षा और स्त्री स्वातंत्रता की ओर आकर्षित हुआ । पाश्चात्य सभ्यता और शिक्षा के कारण उनके जीवन में आधार भूत परिवर्तन हुआ । स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन आया सभी समाज सुधारकों और धार्मिक नेताओं ने उनके उद्वार के लिये आन्दोलन प्रारम्भ किया। सामाजिक बुराइयों, कुरीतियों और प्रथाओं पर उन्होनें कठोर प्रहार िया।[3]

------- ------------------------------------------

1.डॉ0एस0के0पारिख एवं ए0सी0दहीयाते-भारत की सामाजिक-आर्थिक संरचना के तत्व पृ।35
2.वही.......................
3.इण्डिन सोशल रिफार्मर अक्टूबर 1931, पृष्ठ 15.

**पुनर्जागरण आन्दोलनों का प्रभाव**

1. राजाराम मोहन राय तथा ब्रहम समाज का प्रयास - इन्होने सती प्रथा और बहु-विवाह का विरोध किया उन्होने यह तर्क दिया कि भारतीय धर्म शास्त्रकारों के अनुसार विशिष्ट परिस्थितियों में ही पुरूष एक पत्नी के जीवित हरते हुये दूसरा विवाह कर सकता है, इसे दूसरा विवाह करने का अधिकार नही है । उन्होने बाल-विवाह और पर्दा पथा का भी विरोध किया। वे विधवा विवाह के प्रवल समर्थक के अपने विचारों और सिद्धान्तों को साकार रूप देने के लिये उन्होने ब्रहम समाज की स्थापना की। स्त्री शिक्षा के लिये कलकत्ता में हिन्दू कॉलेज की स्थापना की।[1]

2. स्त्रियों के लिये ईश्वर चन्द्र विघासागर का प्रयास- इन्होने पुनर्विवाह के लिये और बहु विवाह के विरूद्ध भी आन्दोलन चलाया। उन्होने सरकार से मांग की कि बहु-विवाह पर प्रतिबन्ध लगाने के लिये एक कानून पारित किया जाये। उन्होने बहु विवाह के विरूद्ध आन्दोलनों को बहुत तेज किया। उन्होने बहुत विवाह के विरूद्ध दो पुस्तके भी लिखी । वे आजीवन स्त्रियों की स्थिति को सुधारने के लिये संघर्ष करते रहे।[2]

3. स्त्रियोंद्वार के लिये न्यायमूर्ति रानाडे और प्रार्थना समाज का प्रयास - स्त्रिलों की दशा सुधारने के लिए प्रार्थना समाज ने महाराष्ट में आन्दोलन आरम्भ किया। इस आन्दोलन

---

1. पत्रिका चॉद दिसम्बर 1931 पृष्ठ 275.

3. पायनियर, 10 दिसम्बर 1932, पृष्ठ 5.

के नेतृत्व न्यायमूर्ति रानाडे ने किया । उन्होंने अन्तर्जातीय विवाह और विधवा विवाह का समर्थन किया। प्रार्थना समाज ने 'विधवा-विवाह-संघ' की स्थापना की।

4. स्त्रियोंद्वार के लिये थियोसाफिकल सोसायटी द्वारा पयास - स्त्रियों की शिक्षा के लिये थियो साफिकल सोसायटी ने अनेक शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना की। श्री मती एनी बसेन्ट का भारतीय समाज में महिलाओं की दशा सुधारने में महत्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होने भारतीय महिलाओं की प्रेरणा प्रदान की और राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व किया 1914 में वे राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्षा निर्वाचित हुई। इससे महिला समाज गौरवान्वित हुआ।[1]

19वीं शताब्दी में सभी समाज सुधारकों का ध्यान स्त्री शिक्षा और स्त्री उद्धार की ओर आकर्षित हुआ। अतएव स्त्री शिक्षा और स्त्रियोंद्वार के लिये अनेक संघ, संस्थाओं और समितियों का गठन किया गया । 1876 में स्त्रियों में शिक्षा के प्रसार के लिये सिल्हट यूनियन' की स्थापना हुई । 1877 में बंगाल में 'हितैषणी सभा' की स्थापना हुई। परन्तु स्त्रियोंद्वार के लिये संगठित प्रयास भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद ही प्रारम्भ हुआ । कांग्रेस की स्थापना के साथ ही साथ अखिल भारतीय महिला कांन्फ्रस' की स्थापना हुई । 1886 में स्वर्ण कुमारी देवी ने 'महिला समुदाय' नामक संस्था की स्थापना की।[2]

---

1. पायनियर, 12 जनवरी, 1932, पृष्ठ 6.
2. डा0 एस0के0पारिख एवं ए0सी0दहीभाते; भारत की सामाजिक आर्थिक, संरचना एवं संस्कृति के तत्व - पृष्ठ - 138.

1907 में 'भारतीय स्त्री एसोसियेशन' की स्थापना की गई । श्रीमती रामाबाई के नेतृत्व में 'हिन्दू लेडीज सोसल क्लब' ने स्त्रियाँ में शिक्षा प्रसार और उनके उद्धार के लिये महत्वपूर्ण कार्यकिया । व्यक्तिगत स्तर पर महिलाओं की शिक्षा के लिए देश के विभिन्न भार्गो में शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना की । शिक्षा के अतिरिक्त सभाग सुधारकों का ध्यान विधवा समस्या की ओर थी। गया । 1887 में शशिपद बनर्जी ने'विधवाश्रम' की स्थापना की। स्त्रियाँ के उद्धार के लिये प्रदेशों में महिला मण्डलों की स्थापना की गई। इनमें 'गुजराती हिन्दू स्त्री मण्डल' 'सेवा सदन', 'महिला समिति', 'भागिणी समाज, 'भारतीय महिला परिषद् आदि संस्थायें विशेष उल्लेखनीय हैं । इन संस्थाओं ने स्त्रियों की दशा सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1919 के बाद स्त्रियों ने बड़ी संख्या में राजनीति में हिस्सा लेना प्रारम्भ किया । 1922 में प्रथम बार स्त्रियों को विधान सभा का सदस्य होने का अधिकार मिला। 1927 में डॉ0 मधु लक्ष्मी रेड्डी मद्रास प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा की सदस्य बनी। इसके बाद स्त्रियाँ अनेक कौसिंलों, संस्थाओं, कॉर्पोरेशन और म्युनिसिपैलिटियों, की सदस्या बनी। 1926 में 'अखिल भारतीय महिला संघ' की स्थापना हुई।[1]

इस प्रकार ब्रिटिश सरकार ने स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए समय समय पर अनेक अधिनियम पगरित किये परन्तु उपेक्षापूर्ण नीति के कारण कानून निरर्थक हुये।

---

1 डा0 एस.के. पारिख एवं ए.सी.दहीमाते, भारत की सामाजिक,आर्थिक संरचना एवं संस्कृति के तत्व पृष्ठ 139.

# अध्याय - 2

## स्त्री शिक्षा एवं स्त्री स्वातंत्र्य

# अध्याय - 2

## स्त्री शिक्षा

### शिक्षा का सामाजिक महत्व

आर्थिक क्रियाकलाप किसी भी समाज के अस्तित्व के लिए नितांत आवश्यक हैं। अपने सदस्यों के मात्र भौतिक अस्तित्व के लिए भी समाज को उत्पादन की प्रक्रिया चालू रखनी पड़ती हैं । उत्पादन का अर्थ है प्रकृत में उपलब्ध पदार्थो का मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकने वाले रूपों में परिवर्तन और इसके लिए आवश्यक है प्रकृति के क्रियाकलाप की समझादारी, अर्थात् विज्ञान। जैविक अस्तित्व के लिए आवश्यक सामजिक क्रिया कलाप के सिलसिलें में यंग शास्त्र, भौतिकी, रसायन, कृषिशास्त्र और दूसरे वैज्ञानिक विषयों का विकास हुआ । छोटे या बड़े समूहों के संगठित लोगों ने इस विज्ञान का प्रयोग किया और इस तरह शिल्प विज्ञान अर्थात् प्रौद्योगिकी का विकास हुआ और हस्तशिल्प उद्योग के औजार और हल जैसी चीजों का आविष्कार उत्पादन हुआ । आधुनिक युग में उत्पादन के जिन आश्चर्यजनक साधनों का आविष्कार हुआ है वे भाप, बिजली या आणविक शक्ति द्वारा संचालित होते हैं बहुत पिछड़े हुए देशों में भी विज्ञान और शिल्प विद्या कुछ सीगा तक तो थी ही। उनके पास भी अपना जीवन दर्शन था चाहे वह कितना ही अपरिष्कृत या अनगढ़ क्यों न हो।[1]

अंग्रेजों के आने से पहले भारत का आर्थिक और वैज्ञानिक विकास बहुत कम हुआ था विश्व के बहुत सारे राष्ट्र जब सभ्य जीवन के पथ पर अग्रसर हुए उसके पहले भारतीयों ने गणित, रसायन, औषधि विज्ञान में पथप्रदर्शक का काम किया लेकिन

---

1. ए.आर.देसाई, भारतीय राष्ट्रवादी की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 169.

संभवतः इसलिए भारतीय समाज लगभग उसी पुरानी आर्थिक और सास्कृतिक स्तर पर बहुत दिनों तक स्थिर रहा और भारतीय जनजीवन का समुचित विकास नही हो सका ।

भारतीयों ने इस लम्बी अवधि में उपनिषद के आदर्शवादी दर्शन के अनेकानेक भाष्य प्रस्तुत किये । लेकिन प्रकृति-विज्ञान और प्रौधोगिकी के क्षेत्र में इनकी देन कुछ विशेष नही रही । आधुनिक शिक्षा का प्रारम्भ कर अंग्रेज वैज्ञानिक और समाज शास्त्री ज्ञान के क्षेत्र में भारत को आधुनिक पाश्चात्य उपलब्धियों के सम्पर्क में ले आये।

'समय आ गया है जब यूरोप एशिया को सभ्यता के पुराने ऋण का भुगतान करे। विज्ञान जो पूरब के देशो में जन्मा और पश्चिम के देशों में समाया हुआ, अब सारी दुनिया पर छा जाने वाला है।[1]

भारत का सर्वप्रथम नारी संगठन 'वूमेन्स इण्डियन एसोसियेशन था। इसकी स्थापना सन् 1917 में श्रीमती एनी बेसेन्ट की अध्यक्षता में हुई थी। इसका प्रथम उद्देश्य भारत की अशिक्षित नारियों को शिक्षित करना था। कुछ वर्ष पश्चात् इसकी 87 शाखाएं जगह-जगह पर शिक्षा का प्रसार कर रही थी। इसका मुख्य उद्देश्य स्त्रियों को शिक्षा का

---

1. ट्रिवेलियम, इंग्लैण्ड का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ 168.

शिक्षा देना उनका स्तर ऊँचा करना, उनमें सामाजिक और राजनैतिक चेतना जागृत करना था।

**दी फेडरेशन आफ यूनिवर्सिटी वूमन -**

1920 में निर्मित इस संघ का उद्देश्य वूमन ग्रेजुएट एशोसयिशन का निर्माण करके अनर्तराष्ट्रीय स्तर तक स्त्रियों का ज्ञान बढ़ाना था।

**दी नेशनल कौन्सिल आफ वूमेन**

1925 में स्थापित इस परिषद का उद्‌दश्य स्त्रियों के संघ एवं प्रान्तीय परिषदों को बढ़ाना था। इन संगठनों में कुछ राष्ट्रीय परिषदों के सदस्य बन गए ।

जैसे बम्बई व पूनाका सेवा सदन, सरोज नलिनी महिला समिति, भारत स्त्री महा मण्डल, बंगाल आर्य समाज पंजाब संयुक्त प्रान्त व मैसूर का महिला समाज।

**आल इण्डिया वूमन्स एजुकेशनल एण्ड सोशल कान्फ्रेन्स**

इस सम्मेलन की प्रथम बैठक जनवरी 1927 पूना में हुई। इस बैठक के आधार पर विभिन्न संगठनों को अपने शिक्षा सम्बन्धी विचारो व आयोजनों को बनाना था।

सम्मेलन में अपने भाषण में रानी साहिबा सांगली ने कहा कि - एक वह समय

वह समय था जब लड़कियों की शिक्षा के लिए कोई सहायक नही था, अपितु भारत में शत्रु थे। उन्होने फिर कहा कि - "भारत में प्रत्येक स्थान पर स्त्री शिक्षा की मांग पुरूषों की शिक्षा के समान ही उन्नति के लिए एक मुख्य आवश्यकता मान ली गयी है।"[1]

1929 में हुए इसके तृतीय सम्मेलन में यह निश्चित हुआ कि सामाजिक उन्नति आन्तरिक रूप से शिक्षा की उन्नति पर ही निर्भर है । दोनो को समान स्थान देना चाहिए। इस कान्फ्रेन्स के मुख्य उद्देश्य निम्न थे।

1 .कन्याओं की प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था को बढ़ाना।

2. अध्यापिकाओं व स्त्रियों के लिए प्रशिक्षण सुविधाएं बढ़ाना व उनमें सुधार करना।

3. लड़कियों को शारीरिक शिक्षा देना व पाठ्यक्रमों को और बढ़ाना।

4. शिक्षा प्रशासन सेवा में अधिक स्त्रियों की नियुक्ति करना।

5. पाठ्य पुस्तको का स्तर उठाना ।

6. पर्दा पथा, बाल-विवाह, बहु-विवाह व पति-पत्नी के स्तर में भेद को खत्म करना व पैतृक सम्बन्धी अधिकारों को बढ़ाना।

**स्त्री शिक्षा के लिए हर्टाग समिति के सुझाव**

1919 के गर्वनमेन्ट आफ इण्डिया एक्ट के अनुसार भारत में शिक्षा सुधार के लिए

-----------------------------------------------

1. आर.लिटिल हेल्स, प्रोग्रेस आफ एजकेशन इन इण्डिया,1922-27, पृ0171.

एक आयोग 1929 में नियुक्त करना था परन्तु देशव्यापी आन्दोलनों व जनता की सुधारों के प्रति असन्तुष्टि को देखकर 1927 में ही यह आयोग सर जानसन की अध्यक्षता में नियुक्त किया गया । 1919 के एक्ट के अनुसार उसे देश के शिक्षा सुधारा पर प्रकाश भी डालना था। फलस्वरूप इण्डियन स्टेटट्यूनी कमीशन ने 1929 में सर फिलिप हर्टाग की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की। इस समिति का मुख्य उद्देश्य शिक्षा की उन्नति के कारण व सुझाव देना था।[1]

इस समिति की एकमात्र सदस्य श्रीमती मधु लक्ष्मी रेड्डी थी। जिनका इसमें महत्वपूर्ण योगदान था।

समिति ने कहा कि स्त्री शिक्षा के मार्ग में अनेक कठिनाइयां है। जैसे संकीणता, पर्दापथा व बाल-विवाह ।

1921 की जनगणना के अनुसार 2230000 कन्याए एवं 10 साल के अनतर्गत विवाहित थी। साढ़े आठ करोड कन्याएं जिनमें डेढ करोड मुसलमान थी, 15 साल के अन्दर विवाहित थीं।[2]

---

1. गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया एक्ट 1919 सेक्शन 84 ए, पृष्ठ 3.
2. उपरोक्त पृष्ठ 346.

जनवरी 1932 में एक दूसरी समिति स्त्री शिक्षा के लिए सुझाव प्रस्तुत करने हेतु श्रीमती कैलाश श्रीवास्तव की अध्यक्षता में बनी। समिति के कुछ अन्य सदस्यों में बेगम हबीबुल्ला लखनऊ की कु0 टी0जे0 गांधी कुछ निरीक्षिकाएं आदि थी। कानपुर में यह समिति, शिक्षामंत्री श्री0जे0पी0 श्रीवास्तव से मिली व स्त्री शिक्षा के विकास के लिए अपने विचार प्रस्तुत किये जिनमें सह शिक्षा सुविधाएं देना, स्त्री शिक्षा हेतु सरकार द्वारा अधिक अनुदान देना व शारीरिक प्रशिक्षण की व्यवस्था मुख्य थी।[1]

विदुषी महिला कु0 एस0 आगा ने लेख पम्पलेट प्रकाशित कराया जिनमें लड़कियों की शिक्षा का विवेचन करते हुए कन्या पाठशालाओं पर भी बहुत प्रकाश डाला था।

वास्तव में यह बड़े खेद और लज्जा की बात है कि संयुक्त प्रान्त विस्तार, जनसंख्या तथा महत्व की दृष्टि से प्रधान होते हुए भी स्त्री शिक्षा जैसे परम आवश्यक विषय में भारत के अधिकांश प्रान्तों में पिछड़ा हुआ है। इसका मुख्य कारण यहाँ के निवासियों की मानसिक संकीर्णता अथवा अपरिवर्तनशीलता समझी जाती थी। पर कु0 आगा ने सरकारी रिपोर्टो के अंको द्वारा सिद्ध कर दिया कि इस त्रुटि के अधिकांश उत्तरदायित्व यहाँ के निवासियों पर नहीं वरन् रारकार या उसके शिक्षा विभाग पर है । यद्यपि इस समय

---

1. जनरल रिपोर्ट ऑन पब्लिक इन्सट्रक्शन ऑफ यू0पी0, ऑफ आगरा एण्ड अवध, 1931-32, पृष्ठ 109 व लीडर समाचार पत्र 17 जनवरी, 1932.

शिक्षा विभाग गैर सरकार नियन्त्रण में समझा जाता है और उसकी बागडोर उन्नतिशील भारतीयों के हाथो में रहती है परन्तु जिन लोगों को सरकारी कार्य प्रणाली का भलीभांति ज्ञान है वे जानते है क उनमें कोई नया परिवर्तन और विशेषकर जिसके लिए धन की आवश्यकता हो बिना आन्दोलन किए नही होता है।[1]

अभी तक सरकारी अधिकारियों ने स्त्री शिक्षा के लिए बहुत कम चेष्टा की है और कदाचित वे इसकी आवश्यकता को भली प्रकार अनुभव नही करते है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि शिक्षा विभाग के तीन करोड़ नवासी लाख के बजट में से लड़कियों की शिक्षा के लिए केवल अड़तीस लाख रूपयें खर्च किए जाते हैं ।

मि0 एफ0एल0 श्रायड ने इस सम्बन्ध में ठीक कहा है कि लड़कों को शिक्षा प्राप्त करते हुए पचास वर्ष हो गए है । इससे गांवों का कुछ भी कल्याण नही हुआ है । इसके विपरीत सम्भवतः ये पचास वर्ष पहले की अपेक्षा और भी गन्दे व चरित्र की दृष्टि से हीन हो गए हैं। इसलिए पुरूषों को जिस कार्य में असफलता मिल चुकी है उसे पूरा करने का अवसर एक बार स्त्रियों को भी मिलना चाहिए।[2]

---

1. गवनमेन्ट आफ इण्डिया एक्ट 1919, सेक्शन 84 ए, पृष्ठ 3.
2. पत्रिका चांद से, अक्टूबर 1933 पृष्ठ 595-99, सम्पादक आर.एस.सहगल,चांद कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद।

आल इण्डिया एजुकेशनल कान्फ्रेन्स 1937 तेरहवें शिक्षा सम्मेलन का उद्घाटन 27 दिसम्बर 1937 को कलकत्ते के सीनेट हॉउस में हुआ जिसमें अनेक महिलाओं ने भी भाग लिया । श्रीमती पूर्णिमा बालक ने स्त्री दशा का चित्र प्रस्तुत किया । कु0 खण्डवाला ने अपने भाषण में कहा कि स्त्री व पुरुष जीवन में एक समान रूप से ही आगे बढ़ते हैं अगर स्त्री अपने अधिकारों की मांग करती है तब इसका अर्थ है कि वह अपनी लड़ाई स्वयं लड़ेगी उन्होने स्त्री व पुरुषों के लिए पृथक विषयों की मांग की क्योंकि रचनात्मक रूप से उनका शारीरिक संगठन पृथक होता है। स्त्रियों के लिए उन विषयों का चयन होना चाहिए जो उनके गृह संचालन में उपयोगी सिद्ध हो । स्त्रियों में राजनीतिक चेतना जागृत होना चाहिए जिससे वे स्वयं की व देश की उन्नति करने में सहायक सिद्ध हो सके । उन्होने कहा कि गॉवों शहरों व कस्बों की स्त्रियों को अधिक से अधिक प्रशिक्षण लेना चाहिए । आजकल रूस चीन व स्पेन से स्त्रियां इस कार्य में अग्रसर हो रही है । प्रान्तीय सरकारों का कर्तव्य है कि वे स्त्रियों के इस कार्य के लिए अधिक से अधिक सुविधाएं प्रदान करें । इस प्रकार कु0 खण्डवाला ने अपना भाषण समाप्त किया ।[1]

श्रीमती पूर्णिमा बालक ने नारी समस्याओ पर प्रकाश डाला व कहा कि अध्यापिकाओं की आवश्यकता है परन्तु इससे अधिक गृह निर्मात्रियों की आवश्यकता है । महिलाओं को उच्च शिक्षा की आवश्यकता नहीं है । उन्हे राष्ट्रीय जीवन की समस्त

---

1. रिपोर्ट आन दि थर्टीन्थ आल इण्डिया एजुकेशनल कान्फ्रेन्स कलकत्ता 1937 पृष्ठ 5।

क्रियाओं में भाग लेना चाहिए ।

1939 तक कन्याओं की प्राथमिक शिक्षा में उन्नति नही हो सकी क्योंकि स्त्री शिक्षा हेतु दिया गया अनुदान उच्च और माध्यमिक शिक्षा पर ही व्यय किया जाता था ।

1936 में नियुक्त कु0 टी0 जे0 गांधी ने सुझाव दिया कि कुछ जिला परिषद द्वारा स्थापित प्राथमिक स्कूलों को वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूलों में परिवर्तित कर दिया जाय और लड़कों के उन प्राथमिक स्कूलों में अध्यापिकाओं की नियुक्ति कर दी जाए जहॉं अधिक मात्रा में कन्याए पढ़ती हो ।

समिति ने कहा कि कन्याओं की लड़कों के प्राथमिक स्कूलों में पढ़ने का मतलब था कि सह शिक्षा सफल यहो रही थी इसलिए गॉंवों में 10 वर्ष की उम्र की कन्याओं को सह शिक्षा देने की मान्यता देनी चाहिए व शहरों में 9 वर्ष तक सह-शिक्षा होनी चाहिए

12 अक्टूबर 1915 को श्रीमती फांसेट वेटिड की अध्यक्षता में एक प्रतिनिधि मण्डल भारत राज्य सचिव से मिला व एक जॉंच समिति नियुक्त करने की मांग की । इससे सरकार को भारत में स्त्री शिक्षा के पिछड़पन से परिचित करवाया ।

**शिक्षा सुधारों पर प्रथम महिला सम्मेलन**

प्रथम अखिल भारतीय महिला सम्मेलन बड़ौदा की महारानी की अध्यक्षता में

1927 में 8 जनवरी तक पूना में हुआ । इसका मुख्य उद्देश्य स्त्री शिक्षा की प्रगति के लिए सुझाव प्रस्तुत करना था क्योंकि स्त्री शिक्षा की मांग बहुत प्रबल थी । इस सम्मेलन के होने का कारण शिक्षा निर्देशक द्वारा कालेज कलकत्ता के परितोषक वितरण समारोह पर दिया गया भाषण था । जिसमें उन्होने महिलाओं को सम्बोधित करके कहा था कि शिक्षित महिलाओं को स्वयं आगे आकर स्त्री शिक्षा में रूचि लेनी चाहिए ।

13 जनवरी 1932 में प्रान्त में स्त्री शिक्षा की प्रगति का अध्ययन करने के लिए श्रीमती कैलाश श्रीवास्तव की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गई इस समिति की मुख्य सदस्या थीं बेगम हबीबुल्ला लखनऊ कु0 टी0 जे0 गांधी आदि ।

समिति का मुख्य उद्देश्य निम्न समस्याओं पर विचार करना व उन्हें दूर करना था ।

(1) माता-पिता की संकीर्ण विचार धाराएं किस प्रकार समाप्त की जाए ।

(2) सह शिक्षा होनी चाहिए या नहीं ।

(3) नगर पालिका व जिला परिषदों का कन्या शालाओं पर प्रशासन कैसा हो? व उनमें कौन-कौन से सुधार उपेक्षित हैं ।

(4) स्त्री शिक्षा के लिए अधिक से अधिक अनुदान प्राप्त करने की विधि ।

(5) कन्या शालाओं की स्थिति ।

(6) पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों व परीक्षाओं में कौन - कौन से परिवर्तन होने चाहिए ।

(7) प्रौढ़ महिलाओं की शिक्षा पर्दे में कैसे सम्भव है ।

जाँच समिति श्री जे0 पी0 श्रीवास्तव शिक्षा मंत्री संयुक्त प्रान्त से श्रीमती श्रीवास्तव की अध्यक्षता में उनके निवास स्थान पर मिली व उनसे सह शिक्षा अनुदान व शारीरिक प्रशिक्षण समस्याओं पर बातचीत की ।

**स्त्री स्वातंत्र्य आन्दोलन**

नये आर्थिक पर्यावरण के उद्‌भव नई राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना, आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा पद्धति और चिंतन शैलियों के प्रसार आदि के फलस्वरूप भारत में साधारण राष्ट्रीय और प्रजातांत्रिक जागरण हुआ । उसी की एक अभिव्यक्ति यह भी थी कि जिस मध्ययुगीन सामाजिक अधीनस्थता और प्रपीड़न से भारतीय नारी सदियों से त्रस्त थी उससे उसकी मुक्ति के आन्दोलन शुरू हुए ।

प्राक ब्रिटिश भारत में संभवतः वैदिक युग के शुरू के काल को छोड़कर, हरदम नारी पुरुष की अधीनता में रहती आयी थी । धर्म और विधि में पुरुषों और स्त्रियों और उनके अधिकारों को समान नही माना गया था । समाज में पुरुषों को कुछ ऐसे अधिकार थे उनकी कुछ ऐसी स्वतंत्रताएं थी जिनसे स्त्रियां वंचित थी।

प्रागैतिहासिक कबीलाई समाज को छोड़कर सभी प्राचीन और मध्ययुगीन समाजों की

तरह भारत में भी अंग्रेजों की भारत विजय के पूर्व स्त्री पुरुषों के अधीन थी। अंग्रेजों के आगमन से भारत में नये अर्थ तंत्र श्और नई विधि व्यवस्था की स्थापना हुई और जब भारत पश्चिम के देशों की आधुनिक प्रजातांत्रिक विचारशैली के संपर्क में आया, तो स्थिति अवश्य कुछ बढ़ी ।[1]

अतीत में भी बौद्ध धर्म जैसे सुधार के आन्दोलनो ने स्त्री की स्थिति में सुधार लाने के कुछ प्रयास किये थे । लेकिन स्त्री के प्रति सदियों से जो सामाजिक और कानूनी अन्याय होते रहे थे उनके निवारण के लिए जोरदार आन्दोलन अंग्रेजी शासन काल में ही चल सके ।

यह सही है कि भारत इतिहास में गार्गी, चाँद बीबी, नूर जहाँ, रजिया बेगम, झाँसी की रानी मीराबाई और अहिल्या जैसी औरते हो चुकी हैं जिन्होने साहित्य कला दर्शन प्रशासन और यहाँ तक कि रण कौशल के क्षेत्र भी बड़े चमत्कार किए, लेकिन ये औरते समाज की शासक अधिकार प्राप्त श्रेणियों की उपज थी इसलिए सामाजिक अधीनस्थता की उस स्थिति से मुक्त थी जिसमें अधिकांश भारतीय औरते रहती थी और जहाँ उन्हें आत्माभिव्यक्ति के लिए न तो स्वतंत्रता थी और न उपयुक्त अवसर ।

---

1. ए0 आर0 देसाई भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठ भूमि - पृ0 219

अंग्रेजों की भारत विजय ने भारत का सम्पूर्ण सामाजिक परिवेश बदल दिया । इससे ऐसे वस्तुनिष्ट एवं भावसिष्ठ तथ्यों का जन्म हुआ जिन्होने लोगों में प्रजातांत्रिक भावनाओं का उदय कराया । सामाजिक अस्तित्व की स्थिति में जो समाज सुधार आन्दोजन अद्भूत हुए, उनका एक लक्ष्य यह भी था कि भारतीय नारी जिन सामाजिक और न्यायिक विषमताओं एवं अनीतियों की शिकार है उन्हे दूर किया जाय ।

प्राक ब्रिटिश भारतीय नारी की दासता उन दिनों को आर्थिक सामाजिक संरचना में निहित थी । उस वक्त समाज में व्यक्ति की स्थिति जन्म द्वारा निर्धारित होती थी और नारी को सारी अशक्तता का मूल यह था कि उसका जन्म ही नारी के रूप में हुआ था, धार्मिक विधान स्त्रियों की निकृष्ट स्थिति को प्रवित्र भी बना बता रहे थे ।

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इन सिद्धान्तों की मान्यता के लिए संघर्ष करने पड़े । अंग्रेजी सरकार की झिझक और समाज के पोंगा-पंथियों के प्रति क्रियात्मक प्रतिरोध को कुछ हद तक खतम करने के बाद ही नागरिक अधिकारों के क्षेत्र में स्त्री पुरुष को अधिकाधिक बराबरी का दर्जा दे सकने वाले कानून बन सके ।[1]

## सुधार आन्दोलन

स्त्रियों को दबाकर रखने वाले कानूनों और रीति रिवाजों को खत्म करने के

---

1. ए0आर0 देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ0 220

प्रारम्भिक प्रयास पुरुष जाति के ही प्रबुद्ध सदस्यों ने किया । लेकिन जो इन अनीतियों की शिकार थी वे भी कालक्रम से स्वयं उद्बुद्ध हुई और उन्होने अपने स्वयं के नेतृत्व में अपनी मुक्ति के आन्दोलन चलाये । उन्होने अपने संगठन बनाये और अपनी अशक्तताओं के विरुद्ध संघर्ष के लिए मोर्चाबन्दी की । उनके सामाजिक, राजनीतिक और शैक्षिक उत्थान श्के लिए काम करने वाले संगठनों में ।926 में स्थापित आल इंडिया वीमस कान्फ्रेन्स सबसे आगे था ।

भारतीय औरतों की अशक्तता का उन्मूलन और विभिन्न प्रकारों के उत्पीड़न से मुक्ति की प्रक्रिया काफी लॅम्बी थी । पुराण पंथी भारत और पुरानी सामाजिक और मनोवैज्ञानिक विचारधाराएं इसके विरुद्ध थी । फिर भी इस दिशा में लगातार प्रगति होती रही और अनेक विशिष्ट सफलताएं भी प्राप्त हुई ।

एक जमाने में भारतीय नारी सती और बाल हत्या जैसे क्रूर प्रथाओं की शिकार थी पति के मरने पर विधवा को पति के लाश के साथ चिता पर जल मरना होता था । गरीब माँ -बाप के लिए लड़की की शादी काफी मंहगी थी, इसलिए माँ-बाप प्रायः नवजात बच्चियों की हत्या कर देते थे । सती प्रथा के उन्मूलन के बाद भी, विधवाओं को पुनर्विवाह की सुविधा नही मिली ।

पर्दा प्रथा और मंदिरों में वेश्यावृत्ति जैसी बुराइयाँ प्रचलित थी मूसलमानों में ही

नही हिन्दुओं के कुछ वर्गो में भी पर्दा जैसी घातक और हानिकारक प्रथा प्रचलित थी । औरते मानों जिन्दगी भर के लिए कैद में डाल दी गई हो, उसकी स्वभावतः तीव्र ज्ञानेन्द्रियॉनिष्क्रियता के कारण सुस्त पड़ जाती है । उन तक ज्ञान का प्रकाश नही पहुँच पाता और वे अज्ञान एवं पूर्वाग्रह में पड़ी रहती है, अंधेरे में रास्ता टटोलती, समाज के रीति रिवाज के नाम पर उत्सर्ग ।[1]

प्रचारात्मक कार्य द्वारा राजा राम मोहन राय जैसे समाज सुधारकों ने सती प्रथा को बन्द करने का प्रयास किया और अन्त में लार्ड बैंटिंग ने इसे समाप्त कर दिया। बाद में बाल हत्या को भी अपराध करार दिया ।

औरतों के आन्दोलन ने इस बात पर जोर दिया गया कि पर्दा का सामाजिक प्रगति एवं शरीर और मन पर बुरा प्रभाव पड़ता है । व सामाजिक जीवन के उत्थान में अगर औरतों को अपनी भूमिका अदा करनी है, अगर उनके लिए यह जानना जरूरी है कि कर्तव्यों एवे उत्तरदायित्वों के लिए उनके लड़को को प्रशिक्षित होना है तो पर्दा प्रथा को खत्म होना चाहिए ।[2]

बाल विवाह भी हिन्दू समाज की एक प्रमुख बुराई थी और इससे पुरुषों की अपेक्षा

---

1. राय, लाइफ एण्ड टाइम ऑफ सी0 आर0 दास, पृ0 116.
2. हर हाइनेस द महारानी आफ बड़ौदा, आल इंडिया वीमेंस एजुकेशन कांफ्रेन्स, 1927 के अवसर पर पृ0 450.

स्त्रियों का अधिक नुकसान था । ईश्वरचन्द विद्यासागर के प्रयत्नों के फलस्वरूप 1960 का एक्ट पारित हुआ जिसके अनुसार अविवाहित और विवाहित लड़कियों के लिए सहमति की उम्र बढ़ाकर दस वर्ष कर दी गई ।

**वेश्या वृत्ति का मूलोच्छेद**

मद्रास काउन्सिल के प्रभावशाली सदस्य श्री के0 आर0 वेंकट रमन ऐया ने वेश्यायों और वेश्या वृत्ति पर प्रतिबन्ध लगाने के उद्देश्य से मद्रास व्यवस्थापितका सभा में हाल ही में एक बिल उपस्थित किया था यह विल सिलेक्ट कमीटी से संशोधित होकर रूक गया इस विल को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने के विचार से सुप्रसिद्ध समाज सेविका श्रीमती मुथुलक्ष्मी रेड्डी ने इसमें कई संशोधन उपस्थित करने की सूचना दी है अन्य व्यवस्थापिका सभाओं को भी इस महत्वपूर्ण समस्या की ओर ध्यान देना चाहिए ।

**दिल्ली महिला कान्फ्रेन्स**

विगत 26 नवम्बर नेहरू के सभापतित्व में दिल्ली महिला कांफ्रेन्स का अधिवेशन बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ स्वागताध्यक्ष श्रीमती अब्दुल कादिर तथा सभानेत्री श्रीमती नेहरू के विद्वतापूर्ण भाषणों का उपस्थित महिला मण्डल पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा, कान्फ्रेन्स में कई महत्वपूर्ण और उपयोगी प्रस्ताव पास किया । जिनमें बाल विवाह निषेध और पर्दा प्रथा के निवारण पर विशेष जोर दिया गया क्या बाल विवाह

---

पत्रिका चॉद से पृष्ठ 646 जनवरी 1930

निषेध कानून का विरोध करने वाले व्यक्तियों की ऑखे इससे खुलेगी ।

**माहेश्वरी समाज और पर्दा**

हाल ही में अखिल भारतीय माहेश्वरी महा सभा का अधिवेशन हुआ है उसमें पर्दा प्रथा और बाल विवाह के विरुद्ध प्रस्ताव स्वीकृत हुये है सभा में बहुत सी महिलाएं पर्दे के बाहर बैठी थी इतना ही नही वरन् पर्दे के निवारण के लिए खँडवा, यवतमाक , वर्धा, अकोला आदि स्थानों से प्रचार कार्य आरम्भ हो गये । गत 13 नवम्बर को महासभा की ओर से 'पर्दा निषेध दिवस' मनाया गया था ।[1]

**प्रान्तीय महिला सम्मेलन**

गुजरात प्रान्तीय महिला कान्फ्रेन्स का चतुर्थ सम्मेलन 8 दिसम्बर सन् 1929 ई0 को अहमदाबाद में श्रीमती इन्दुमती दिवान की अध्यक्षता में बड़ी धूम-धाम और समारोह के साथ सम्पन्न हुआ यह हर्ष की बात है कि स्त्रियो के सम्मेलन की कार्यवाही स्त्रियो की ही अध्यक्षता में हुई । यह प्रथा दिनों दिन जोर पकड़ती जा रही है कान्फ्रेन्स में सभी श्रेणियों की स्त्रिया और सभी अवस्थाओं की स्त्रियो ने भाग लिया सुयोग्य सभानेत्री महोदया ने अपनी ओजस्विनी वक्तृता में स्त्रियो की आर्थिक और सामाजिक स्थिति को उन्नत बनाने की आवश्यकता पर साधारण तौर से और शिक्षित बनाने की समस्या पर

---

1. पत्रिका चॉद फरवरी 1930 पृ0 764.

विशेष रूप से बल दिया । आपका सम्पूर्ण भाषण स्त्री शिक्षा के पक्ष में प्रबल और गम्भीर दलील है ।

सभानेत्री महोदया का प्रभावशाली भाषण होने के बाद कांफ्रेन्स में कई उपयोगी और महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए जिनमें से कुछ का सारांश इस प्रकार है :- कि पुरुषों को एक साथ अनेक विवाह करने की स्वतंत्रता न दी जाय अतएव यह कांफ्रेन्स भारतीय गर्वनमेन्ट से अनुरोध करती है कि वह पुरुषों श्की एक पत्नी के जीवित रहते, दूसरा विवाह करे लेने की प्रथा को अवैध प्रमाणित करने के लिए शीघ्र एक कानून का विधान करें ।

**परदे का विरोध**

इस कांफ्रेन्स की राय में पर्दे की प्रथा स्त्रियों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, उनकी शिक्षा के मार्ग मे बाधक और सामाजिक उन्नति का विरोधी है अत: इसका अन्त कर देना चाहिए ।[1]

**संरक्षण गृह**

हाल ही में इस बात के अनेक उदाहरण पाये गये है कि अशिक्षित और असहाय स्त्रियाँ परिस्थिति की शिकार बनकर दुराचार के मार्ग में पड़ जाती है तथा

---

1. पत्रिका चाँद, फरवरी 1930 पृ0 766

कुत्सित कार्यो के लिए उन्हे बेच तक दिया जाता है । इस कांफ्रेन्स की राय में ऐसी दुर्दशा ग्रस्त स्त्रियों की रक्षा के लिए एक संरक्षण ग्रह खोलने की बहुत शीघ्र आवश्यकता है । इसलिए यह कांफ्रेन्स वीमेन्स एसोसिएशन के सदस्यों से प्रार्थना करती है कि वे ऐसी संस्था खोलने का शीघ्र प्रबन्ध करें ।

**बाल विवाह**

यह कांफ्रेन्स राय साहब हरविलास जी शारदा के प्रति बाल विवाह की नाशक प्रथा को बन्द करने के लिए बड़ी व्यवस्थापिका सभा से कानून पास कराया है सहानुभूति प्रकट करती है तथा उनकी अमूल्य सेवा के लिए उन्हें बधाई देती है यह कान्फ्रेन्स देशी रियासतों से साग्रह अनुरोध करती है कि वे शीघ्र से शीघ्र अपनी प्रजा से बाल विवाह बन्द करने के लिए अपनी प्रजा में वाल विवाह निषेध कानून को उसकी सभी धाराओं सहित प्रचलित करें ।

**स्त्रियों की आर्थिक स्थिति**

यह कान्फ्रेन्स भारतीय गर्वनमेन्ट से अनुरोध करती है कि वह शीघ्र से शीघ्र एक कमेटी नियुक्त करके इस बात का विवरण तैयार करावे कि भारतीय स्त्रियों की आर्थिक परवशता को दूर करने तथा उन्हें पैतृक सम्पत्ति में से भाग दिलाने के उद्देश्य से हिन्दू लॉ में किन-किन सुधारों को करने की आवश्यकता है ।

**बहुविवाह निषेध**

स्त्रियों की आत्मसम्मान की रक्षा के लिए यह अत्यनत आवश्यक है जिस प्रकार बड़ौदा तलाक का कानून पास करने में अग्रगण्य हुआ है उसी प्रकार एक दूसरे देशी राज्य ने भी एक अत्यनत घृण्य प्रथा को समूल नष्ट करने की आज्ञा दे दी है वह राज्य है सुधार प्रिय ट्रवंकोर । ट्रवंकोर की सरकार ने 'देवदासी' की घृणित प्रथा को नष्ट करने की घोषणा कर दी है। ट्रवंकोर में यह प्रथा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही थी जिस समय इस प्रथा का प्रचार हुआ था उस समय देवीदासी भगवान की पूजा के लिए आश्वयक समझी जाती थी, उन्हें पवित्र रखने के लिए बहुत कड़े नियम बने हुए थे जिनके अनुसार उन्हे अपना जीवन व्यतीत करना पड़ा था । परन्तु समय पाकर यह आदर्श नष्ट हो गया वे पूजा के लिए नही बल्कि मन्दिर के पुजारियों के लिए भोग विलास की सामग्री बन गई । इनका चरित्र बहुत भ्रष्ट होने लगा और इनका जीवन एक प्रकार से वेश्याओं का सा हो गया[1]।

देवदासी प्रथा के अनुसार माता-पिता अपनी 12 वर्ष की पुत्री को लेकर जिस दिन मन्दिर के अपर्ण कर देते थे उसी दिन से वह विधि पूर्वक विवाह करने से वंचित कर दी जाती थी । उसी दिन उसका विवाह एक कृपाण के साथ कर दिया जाता था कई वर्ष पूर्व राज्य ने इन बालिकाओं को यह आज्ञा दे दी कि वे अपना विवाह कर सकती है तथा

---

1. पत्रिका चॉद जनवरी 1932, पृ0 325

मन्दिर सेवा भी, महारानी की अध्यक्षा में ट्रांकोर राज्य ने यह प्रथा समूल नष्ट कर दी है । आशा है मद्रास प्रान्त जहाँ देवदासी प्रथा अधिक प्रचलित है इन देशी राज्यों का पथानुसरण करेगा ।

आशा का सबसे महत्वपूर्ण चिन्ह जो हमें दिखाई पड़ रहा है वह है भारतीय स्त्रियों की जागृति यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि हमारे समाज का भविष्य बहुत कुछ हमारी माताओं और बहिनों पर निर्भर करता है । जब तक वे अपनी शक्ति को नही पहचान लेती, जब तक वे अपने अधिकारों को समझ कर उसके लिए आन्दोलन नही करती, तब तक समाज का भविष्य उज्ज्वल नही हो सकता । हमें इस बात की चिन्ता नही है कि वे किस प्रकार अपने अधिकारों को प्राप्त कर सकेगी न हमें इस बात की चिन्ता है कि उनको इस प्रयत्न में कितना समय लगेगा । हमारी दृष्टि में जो सबसे आवश्यक है वह यह है कि वे अपने अधिकारों को पहिचान लें ज्योहि उनमें आत्म जागृति उत्पन्न हुई त्योंहि वे अपने अधिकारों को प्राप्त करने का प्रयत्न प्रारम्भ कर देगी। उनकी शक्ति को हम जानते नही और वे ही उसे जानती है । इसलिए उनके आन्दोलन हमें शिथिल दिखाई देते हैं ।[1]

इसी प्रकार के सम्मेलन दो मास पूर्व लखनऊ में हुए एक तो था अवध

---

1. पत्रिता चॉद, जनवरी 1932 पृ0 326

महिला सम्मेलन, जिसकी प्रधाना थी ग्वाजियर की रानी लक्ष्मीबाई राजबाड़े, दूसरा यू0 पी0 महिला सम्मेलन जिसकी प्रधाना थी बेगम सईदा सुल्तान मुहम्मद उल्लाह साहिबा, इन दोनो के भाषणों का प्रत्येक शब्द हमारे उपर्युक्त विचारों की पुष्टि करता है । रानी साहिबा का भाषण तो बहुत महत्व का है । इनमें दो बड़ी मार्के की बाते कहती है - एक तो स्त्रियों के उत्तराधिकार के विषय में और दूसरी सन्तति निग्रह के विषय में । उत्तराधिकार के विषय में रानी साहिबा कहती है --

स्त्रियों के लिए और विशेष कर हिन्दू स्त्रियों के लिए अत्यधिक आवश्यक विषयों में से एक है उत्तराधिकार का प्रश्न । यह सभी जानते है कि हिन्दू समाज में स्त्रियों कोपति की या पिता की जायदाद में कुछ भी अधिकार नही है । इस व्यवस्था मे विधवाओं को बड़े कष्ट सहते पड़ते है भारतीय महिला मण्डल के हितैषी श्री हरविलास शारदा इस बात का प्रयत्न कर रहे है कि इस विषय में विघवाओं को कुछ अधिकार देने के लिए एक कानून बना दिया जाय । परन्तु यह प्रयत्न इस दूषित प्रणाली के लिए एक छोटे से अंश को श्ही सुधार सकेगा । इस विषय में बड़ौदा और मैसूर राज्यों का कार्य अनुकरणीय है ।'[1]

रानी साहिबा के इन वाक्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रश्न पर स्त्रियाँ पुरुषों से कोई समझौता करने को तैयार नही हैं ।

---

1. पत्रिका चाँद, जनवरी 1932, पृ0 327

सन्तति निग्रह के विषय में आपने कहा है कि राष्ट्र के सामने एक प्रमुख समस्या है जनसंख्या श्की वृद्धि को रोकने की । यदि भारत को उच्च राष्ट्रों के साथ आसन प्राप्त करना है तो उसे केवल योग्य सन्तानें ही उत्पन्न करना चाहिए । इसके लिए हमें सन्तति निग्रह श्के उपायों की सहायता लेनी पड़ेगी । इसका प्रभाव केवल यही नही होगा कि भारतीय स्त्रियों का शारीरिक और मानसिक भार कम हो जाय, बल्कि इससे आज कल की आर्थिक समस्या के हल करने में भी भारी सहायता मिलेगी ।'

कुछ दिन हुए बरेली में आर्य महिला सम्मेलन की सभानेत्री पद से डा0 कुन्तल कुमारी जी ने एक बड़ा सारगर्भित तथा उपयोगी भाषण दिया था-

हम आर्य महिला तब हो सकती है जब हम अपनी जाति को आर्य अर्थात सभ्य बना सकें, जब तक जगत की करोणों नारियॉ जेल खाने में पड़ी कराहती रहेगी , जब तक नारियों का अपमान होता रहेगा और वह समाज में हीन स्थान पर ही रखी जायेगी तब तक बहिनों हमारे आर्य महिला होने से कोई लाभ नही है । जब तक हम अपनी जाति को दासता के बन्धन से मुक्त नही कर सकती है हमें अधिकार नही है कि हम अपने को आर्य महिला के नाम से पुकारे ।' [1]

---

1. पत्रिका चॉद मई 1932, पृ0- 73

हम देश के लिए स्वराज्य चाहती है मगर हमने अपनी जाति के लिए क्या आज तक स्वराज्य हासिल किया? नारी- जाति जब तक पराधीन तथा गुलामी करने को मजबूर है तब तक किस मुँह से पुरुषों श्के लिए स्वराज्य माँगती हैं । देश उन्ही जैसे हमें भी प्यारा है देश में उनकी जैसी जरूरत है हमारी भी वैसी ही है । समाज में जो उनका सम्मान है हमें भी वही चाहिए । कांग्रेस को जो फैसला हैख जाति, धर्म, वर्ण, स्त्री और पुरुष निर्विशेष सामाजिक और नागरिक अधिकार के लिए इसके लिए हमें अवश्य लड़ना चाहिए ।

अपने बारे में कुछ कहने का अधिकार नारी को बिल्कुल नही है मूक पशु की भाँति चाहे जब जिस अवस्था में पड़ जाय उसी अवस्था के सुख-दुख को भाज्य समझना ही उसका फर्ज है जिन विषयों पर उसका हक या दावा है उन विषयों पर भी उसे जबरदस्ती चुप रहना पड़ता है नही तो आज भारत में पाँच साल की दुधमुही बच्ची के पचास साल के बुड्ढे के साथ गठबन्धन कराया जाता है । तीन साल की विधवा लड़की को जिन्दगी भर एक दासी व्रत करने को शास्त्रीय आदेश नरकमय दिखा कर विवश करते हैं, जीवन सफल बनाने के लिए भारत नारी के पास साधन ही और क्या रहा ? जो ताजी हवा, ताजी धूप, आजादी का आनन्द कभी नही पाती, उनके लिए हम क्या करती है? जिनके आँखों के सामने कोई रास्ता नही है ? उनके लिए क्या हमारा कोई कर्तव्य नही है ? केवल आर्य महिला कहला कर मीठी नींद में सो जाने से हमारा धार्मिक कर्तव्य पूरा नही होता है हमारे नाम का तक ही गौरव है हमारे समाज की तथी उन्नति है, जब

हम अपनी सभ्तया, शिक्षा, संस्कृति अपनीजाति के हित के लिये व्यवहार करें । हम उन्हें अपनी तरह सभ्य शिक्षित, संस्कृत, स्वाधीन, शक्तिशाली बना के।[1]

आज जब हम अखबारों में पढ़ती है कि संयुक्त प्रान्त के एक किसान ने अपनी दस साल की लड़की को एक बुडढ़े को बेचकर सरकार की मालगुजारी अदा की । बंगाल के एक 80 साल के गंगा यात्री बुडढ़े ने 16 साल की एक गरीब ब्राह्मण लड़की की बरमाल लेकर उसे पार लगाया, कही पांच औरत रहते रहते छठीं को व्याह लाया । एक पांच मासकी लड़की की शारदा एक्ट होते हुये भी तीन साल के लड़के के साथ शादी हो गई । किसी प्रान्त में बाप के दहेज न दे सकने के कारण सुकुमार लड़की ने शरीर पर मिट्‌टी का तेल उड़ल कर आग लगा ली। कोई विधवा सास, ससुर, देवर का अत्याचार न सहने के कारण गंगा में डूब मरी, कोई घर से निकल कर मुसलमान गुड्‌डों के हाथोंमें जा फॅसी, कोई किसी को भुलाकर विधवा आश्रम के कैदखाने में दाखिल की गई और वह वहॉ जबरदस्ती बार बार शादी के लिये मजबूर की गई । यह सब पढ़ते सुनते क्या हमें जरा भ्‍भ शर्म नही आती यदि आर्य महिला होते हुए भी हमारे देश की नारियों के ऊपर ऐसे कारवॉं कारव अत्याचारों की कहानिया सुनकर हमारे रोगटे खड़े न हो जायं, दिल न पसीजे तो हम भले ही अनार्य नारी बन जाय।[2]

---

1. पत्रिका चॉद, मई 1932, पृष्ठ 74.
2. पायनियर 6 अगस्त, 1940. पृष्ठ 5.

कानूनन सन्तानों के ऊपर, जिन्हें वह खून पानी करके पालती है उन पर नारी काकोई अधिकार नहीं है । स्वामी के ऊपर ही क्या है? अपनी जीती जागती अवस्था में पति चाहे शराब पिये, वेश्यारथ्यि का आश्रय के अथवा नये नये व्याह रचाये पत्नी का कोई अधिकार नही है कुछ भी कहना दुःख से जल के मरे अथवा आत्मघात करके, इनमें समाज की कोई क्षति नहीं है । दुर्भाग्यवश वह पति के साथ वह चाहे बदमाश, नशेबाज, लूला,लंगड़ा, बहरा, कुष्ठरोगी कैसा भी हो, पत्नी का भवान्तर हुआ और उसने घर से बाहर कदम उठाया, बस भारतीय समाज सदा के लिये उसके पीछे दरवाजा बन्द कर देगा। उसे पार लगाने के लिये और कोई रास्ता नही है । सिर्फ बाजार का आश्रय । अतएव इस परिस्थिति में विवाह और वेश्यावृत्ति इन दो पेशों के सिवाय उदर पोषण का और कोई अन्य मार्ग नही है । धन में उकसा कोई धिकार नही, स्वाधीन जीविकोपार्जन के लिये, उच्च कुल में नारियों की पाबन्दी, हर तरह से पराधीन वनकर, अब नारी बचा करें।? बाकी शेष रहा धर्माचरण अतएव बदिनी पराधीनता नारी धर्म साधन का ही जीवन का सार जानती है। बचपन से धर्म के नाना प्रकार, आचार, विचार उसे सिखाये जाते हैं। कुमारीपन, शिवपूजा, सूर्यपूजा करके देव सृदश पत्रिका में कामना और सधवा, विधवा अवस्था में पति और ससुर कुल की सेवा, शास्त्र पुराणोंकी मनमानी कथाओं को एकान्त निष्ठा और भक्ति से पालन करना उनके जीवन का प्रधान सुखा है । वह विचार करना नही जानती है जानती है सिर्फ धर्मकरना। उसे समझा दो यह तुम्हारा धर्म है । वह मरते दम तक उसे नही छोड़ेगी।[1]

---

1. पत्रिका चॉद मई 1932, पृष्ठ 76.

भारतीय नारियों धर्म के नाम पर सब सज करने को तैयार है । धर्म का बहाना बनाकर कहीं विधवा आश्रम कही अनाथालय बन जाते हैं । उसके अन्दर नारियों की मर्यादा पर धर्म की परिधिके भीतर क्या क्या अकथनीय अत्याचार हो रहे है । कहने में जबान शर्माती है । आर्य धर्म के दविग गम पर कितनी विधवा-विवाह सहायता समायें, बनिता विश्राम आश्रम, महिला आश्रम आदि खुले है । ऋषि दयानन्द का पुण्य लेकर धोखे बाजों ने कितने अनाथालय आतुर सहाय आश्रम आदि खोलकर दुनिया को ठगा है। क्या इसका कोई हिसाब है मै खूब जानती हूँ ऐसे-ऐसे आश्रमों में धर्म के नाम पर खूब व्याभिचार हो रहा है। विधवा विवाह का ढोंग रचकर, पवित्र वेद के विवाह मन्त्र को कलंकित करके एक स्त्रची को दस दस बार विवाह देना, फिर उन्हें बार बार अपने पति के यहाॅ से भगा देना, यह चाहे किसी भी समाज में दो नारी का घोर अपमान है ।

इस पर हाल ही मेंदिल्ली में कई मुकदमें बाजी हो गई है। विधवा-विवाह उचित है लेकिन ऐसे विधवा आश्रमोंका अर्थ पाप का गढ़ औरत बेचने के अड्डों के सिवाय और कुछ नही है। इससे भले धरो की बहु-बेटियों की बहुत बेइज्जती होती है । इन आश्रमों के बीस बीस स्वयंसेवक व कमीशन एजेन्ट यहाॅं मौजूद रहते हैं जो कभी कभी भले घर की बहु-बेटियों को भी विधवा आरम ने लाकर बदमाशों के चंगुलमें फॅसा देते है। इनकी कोई सास संस्था नही है । विधवाओं को पढ़ाना लिखाना दूर रहा आश्रम में पहुॅचते ही शादी की तैयारियों शुरू हो जाती है।[1]

---

1. पायनियर, 3, जुलाई 1940, पृष्ठ3.

सेक्रेटरी मनमानी करते रहते है। स्वयं पिताजी बन कर और 10-15 रू में एक अधेड़ औरत को विधवाओं के निरीक्षण के लिये माताजी बनाकर रखदेते हैं यह कार्यकर्ता इन्हें बन्द कमरों में ताला ठांक कर रखते हैं। बड़े बड़े नामों को लेकर प्रसीडेन्ट वाइस प्रेसीडेन्ट और मेम्बर बना देते हैं । जिनके दर्शन किसी सभा तक में प्राप्त नहीं हाते हैं। हर साल शानदार झूठी रिर्पोट छपवाकर सीधे-सादे सज्जनों से चन्दा उगाहकर अपना उल्लू सीधा करते हैं । नारी रक्षाके नाम पर यहएक पाप व्यवसाय नही तो और क्या है।[1] 400-600 रू एक-एक कन्या का मूल्य लेकर हर बार किसी न किसी नाम से कभी, रश्मी कभी सरस्वती कभी गोपी को चद्रावती बनाकर एक स्त्री को बार बार बेचकर धन कमाना, पवित्र धर्म समाज के नाम पर कलंक का टीका लगाना। ओफ । आर्य बहनों! समाज के अन्दर ऐसे धृवित अत्याचार धर्म के नाम से पवित्र वैदिक विवाह मन्त्र लेकर ऐसा खेल इससे तुम्हारी अपनी इज्जल पर कैसा बटटा लगता है । इसे एक बार सोचो तों । जिन विवाह मन्त्रों को पढकर आर्य कुमारियों का पवित्र विवाह किया जाता है । वही दो दो रूपयें लेने वाले पुरोहितोंके नाम बेचा जाता है । विधवा विवाह के नाम पर सधवा विवाह, गर्भवती का विवाह, ससन्तान माता को लेकर दूसरे के गले मढ देना और थोड़ी सी बात पर विवाह सम्बन्ध से दस्त बदीरी की चिट्ठी भी लिखा, लेना, यह सब जुआ, चोरी और धोखेबाजी होती है । आर्य समाज के नाम पर कही दयानन्द विद्यालय कही श्रद्धानन्द पाठशाला, कहीं वैदिक धर्म शिक्षालय खुले हुये है पर पढ़ाई लिखाई और यतीम बच्चों की

---

1. पायनियर, 14 अगसत, 1942, पृष्ठ 5.

की हिफाजत का कही भी नाम नहीं । हर तरीके से जनसाधारण से चन्दा बटोर कर अपना पेट भरना। बहिनो बतलाओं तुम्हारी आंखों के सामने आर्य समाज में यह सब हो रहा है या नहीं यदि होता है तो तुमने आर्य महिला का पवित्र नाम किस हैसियत से हासिल किया है।[1]

आज एशियाई मलिाओं में नव जागरण हुआ है । पर्दा नशीन मुस्लिम बहिनें, जो हमसे बहुत पीछे थी आगे बढ गई है । तुर्किस्तान, ईरान, मिश्र के घर-घर में आजाी का झण्डा फहराने लगा है । नारी वहाँ सेवा विभाग से लेकर सैन्य विभाग तक में दखल करनेको तैयार हो गई है । कुरान के पवित्र अनुशासनान्तर्गत पुरूषों के बहुविवाह के विरूद्ध सपत्नीक पुरूषों को अपनी लड़की नहीं देगें । यह फैसला अपने अलौकिक साहस से उन्होने दृढ कर लिया है । बुरका आज उनके सुन्दर बनदन को ढ़कने वाला भूषण नही रहा । काले बुरके के साथ वह असान कालिमा को हटाने का यत्न कर रही है । वह चाहती है ओज प्रकाश, प्रतिमा जीवन को सफल बनाना। बौद्ध बहिनों का जागरण और भी आगे हो गया है । जिन देशों में तुम्हारी पूर्वजाओं ने ज्ञान की शलाका जलाई थीं और पौढ परिब्राजिकाओं ने अपने मित्र भाइयों के साथ सुदूर ब्रहमा, स्याम, चीन जापान मेंजाकर जिन्हें धर्म, कर्म मोक्ष मार्ग की शिक्षा दी थी वही आज तुम्हें असभ्य, पदाक्रान्त, परतंत्र समझती है।[2] वहाँ तुम्हारी भारतीय बहिने कुलीगिरी करनेको जाती है। कैसी शर्म और क्षोभ की बात हैं।

---

1. पत्रिका चांद मई 1992, पृष्ठ 75.
2. उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य बशन्निबोधत ।

सत्य हमारा ध्येय, कर्म हमारा प्रेम औरा शान्ति हमारा साधन है । हम विश्व सेविका विरांगनायें है । हमें परमात्मा का आर्शीवाद है, भारत की बन्धन मुक्ति हमी से हो सकती है । हमने स्वराज्य देवता के दर्शन किये है। हम देशको स्वाधीन करके ही छोड़ेगी। यह स्वाधीनता राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक परमार्थिक होगी । इस सत्य के झण्डे के नीचे वैदिक सतयुग भारत में फिर से आ जायेगा । हम उसी सपने में विभोर है। रात खत्म हो गई है, अरूणोदय है। सूर्योदय को अब और क्या देर?

**पांचवी अवधमहिला कोन्फ्रेन्स (रानी लक्ष्मीबाई राजवाड)**

वर्तमान युग राजनैतिक आन्दोलनो का युग है । अतः अधिकांश लोगों का ख्याल है कि अभी सामाजिक क्षेत्रों में काम करने का समय नही है । ऐसे विचार के लोगों के लिये महिला आन्दोलन का महत्व वर्तमान राजनैतिक आन्दोलनो से बहुत कम है। किनतु यह भारी भूल है उत्साही कार्यकत्रियाॅ अपनी बहिनोंकी दशा सुधारने की ओर ध्यान दे रही है उन लोगों ने इस प्रकार से सुधार कार्य की वास्तविक आवश्यकता का अनुभव कर लिया है । यहाॅ पर मैं भिन्न भिन्न लोगों मे सुधार कार्य की आवश्यकता के सम्बन्ध में अपना मन्तव्य जाहिर करना चाहती हूँ।[1]

---

1. आज 10, नवम्बर, 1935, पृ0 2.

**शिक्षा**

मेरी राय है कि शिक्षित बहिने अशिक्षित बहिनों की शिक्षा का भार अपने अपर लेनें तो यह समस्या बहुत कुद आसान हो जाय। मैं यह मानती हूँ कि बिना सरकारी महायता के यह सम्भव नही है । सरकार को उचित है । कि वह प्रारम्भिक शिखा अनिवार्य कर दें तथा स्त्री शिक्षा के लिये काफी आर्थिक सहायता दे। जब तक सरकार स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में सहायता देना अपना आवश्यक कर्तव्य नही समझ लेती, तब तक हमें स्वयं इस सम्बन्ध में चेष्टा करनी चाहिए। यदि प्रत्येक शिक्षित महिला साल में दश पॉच बहिनों को भी शिक्षित बना सके तो महिला समाज से अवधिा का अन्धकार भित्ते देर न लगे।

**शारदा एक्ट**

यदि महिला समाज से निरक्षरता दूर दो जाय, तो समाज से अनेक बुराइयों से हम दूर हो जाय। उस हालत में शारदा एक्ट के पालन करने की निगरानी करने वाली संस्थाओं की आवश्यकता न रह जायेगी । पर्दा आदि के सम्बन्ध में भी जो प्रचार किया जा रहा है उसकी भभ जरूरत न होगी।

**अछूतोद्वार की समस्या**

अछूतों की समस्या हिन्दू समाज का एक कलंक है उत्तरी प्रान्त में भी इनके साथ काफी सख्तो की जाती है। मैं बहिनों से प्रार्थना करूँगी कि वे व्यक्तिगत रूप से अछूतों

द्वार का काम अपने हाथ में ले ले। अछूत कहे जाने वाले भाइयों और बहिनोंके प्रति होने वाले अन्यायपूर्ण व्यवहारोंको दूर करने की कोशिश करें । महात्मागांधी के आगे आजादी के बाद अगर दूसरी समस्या हो तो वह अछूतों की दी समस्या है।[1]

### उत्तराधिकार का प्रश्न

हिन्दू महिलाओं के आगे उत्त्राधिकार भी टेढ़ा प्रश्न उपस्थित है। यह सभी जानते है कि हिन्दू स्त्री को बम्बई और मालावार को छोड़कर अपने पति या पिता की जायदाद पर कोई अधिकार नही होता । उत्तराधिकार का अधिकार प्राप्त न होने से हिन्दू महिलाओं को विशेषकर विधवाओं कोक्या क्या मुसीबते उठानी पड़ती हैं। सरकार को चाहिये कि वह महिलाओं के उत्तराधिकार सम्बन्धी अधिकारों की जांच करने के लिये कमीशन नियत करें।

### तलाक

हमारे समाज में तलाक की प्रथा प्रचलित न होने से अनेक पारिवारिक दुर्घटनायें घटती रहती है । वास्तव में हिन्दू समाज के लिये तलाक की प्रथा की बड़ी भारी आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में मै मुस्लिम समाज का अनुकरण करना चाहिये।

---

1. आज 10 फरवरी, 1935 ,पृष्ठ 4.

**जनसंख्या की वृद्धि**

जनसंख्या सम्बन्धी रिपोर्टो को देखने से पता चलता है कि अनेक महामारियों के फैलने पर जी जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है । यदि भारत को संसार के अन्य राष्ट्रों के परिवार में स्थान प्राप्त करना है तो उसे ऐसी जाति उत्पन्न करनी होगी जो सब प्रकार से योग्य हो । यदि जनसख्या वृद्धि का सवाल हक हो जाय तो स्त्रियो का सामाजिक और शारीरिक अपव्यय रू जाय।

**मजदूर स्त्रियों की दशा**

हमारे देश की मजदूर स्त्रियों की दशा काफी गिरी हुई है। किसी से छिपा नही है। उन्हें अपने साधारण तथा उचित अधिकारों का ज्ञान तक नही है। वे पूंजी पतियों की गुलामी में इस कदर जकड़ी हुई है किं उन्हें अपनी सत्ता का वोध तक नही है। महिला संस्थाओं को उचित है कि उनकी ओर से आवाज बुलन्द करें।

**स्वदेशी का व्रत**

प्रत्येक महिला को स्वदेशी का व्रत ग्रहण करना चाहिये । हमारी बहिनों को यह मालूम होना चाहिए कि हमारे देश में ऐसे असंख्य लोग है कि जो नही जानते कि भोजन दोनो वक्त किया जाता है । बहुतों को दिन में एक बार भोजन मिलना भी कठिन होता है । ऐसी अवस्था में स्वदेशी व्यवसाय की सहायता करने का अर्थ है उन भूखे

प्राणियों की जीवन रक्षा। हममें से बहुतों को विदेशी जब रखने की बीमारी भी हो गई है। ऐसे लोगों को जरा अपने देश की अवस्था की ओर तथा अपने गरीब भाइयों की ओर दृष्टिपात करना चाहिये। मै कहूँगी, "स्वदेशी के प्रश्न का सम्बन्ध राजनीति से उनका रही है जिनका कि समान से है।"[1]

मंदिरों में वेश्यावृत्ति की प्रथा नये भारत को अतीत से विरासत में मिली थी, यद्यपि इस तरह की प्रथा यूनान में प्रचलित थी। देव दासियों की वंशागत जाति ही थी और ये बचपन में ही मन्दिरों की सेवा में समर्पित हो जाती थी, हाल में मद्रास में उनकी संख्या लगभग दो लाख रही होगी, यद्यपि इनकी संगति और नृत्य कुशलता के कारण ये कलाएं जीवित बनी रही, फिर भी इस तथ्य के कारण ये वे देवदारियाँ वेश्यायें थी, सम्मानीय कुलीन औरतों के लिये ये कलाये निकृष्ट और अप्रिय अरूचिकर थी।[2]

डा0 मुन्नु लक्ष्मी रेड्डी और अन्य सुधारकों के सतत् प्रयत्न के फलसवरूप, 1925 में एक एक्ट पारित हुआ और 'दंड सहिता की कुछ धारायें जिनके अनुसार नाबालिग लड़कियों का अवैध अनैतिक व्यापार दंडनीय है देवदासियों पर भी लागू हुई ।[3]

---

1. पत्रिका चांद , नवम्बर 1935, पृष्ठ 76.
2. ओ मेवी, मार्डन इण्डिया दि वेस्ट, पृ0 संख्या 453.
3. आज, 10 अक्टूबर, 1930. पृष्ठ 3.

# अध्याय - 3

## बीसवीं शताब्दी में महिलाओं से सम्बन्धित सुधार

## बाल-विवाह, विधवा, अन्तर्जातीय विवाह, इत्यादि

## अध्याय - 3

## बाल विवाह

भारत में बाल विवाह की प्रथा सैकड़ों वर्षों से प्रचलित है यहाँ दुध मुँहें बच्चे बच्चियों का विवाह हो जाता है। कम अवस्था में वे कई सन्तानों के माता पिता हो जाते है । इन कमसिन नवयुवकों का स्वास्थ्य हमेशा के लिए खराब हो जाता है और वे छोटी उम्र में मृत्यु को प्राप्त हो जाते है उनकी संतान भी बहुत दुर्बल हो जाती है जो इस संसार में प्रायः पांच वर्ष भी नही रह पाती है । अगर साभौग्य से कोई बालक बच भी गया तो वह अनेक रोगों का शिकार हो जाता है । अपना जीवन दुःख में व्यतीत करता है।[1]

हिन्दुओं में जिन जातियों का विघवा विवाह नही होता उसका एक भयंकर परिणाम होता है कि बाल विधवाओं को बहुत अधिक कष्ट सहना पड़ता है । व्यक्तिगत, सामाजिक और नैतिक दृष्टि से बाल-विवाह प्रथा वास्तव में बहुत निन्दनीय है।[2]

इस कुप्रथा को रोकने के उद्देश्य से सन् 1929 में एक कानून भारत में बनायागया है इसे शारदा एक्ट कहते हैं, इस कानून के अुनसार 14 वर्ष से कम उम्र की लड़की और 18 वर्ष से कम उम्र के लड़के का विवाह कराने वाले व्यक्तियों को दण्ड दिया जा सकता है । परन्तु यह कानून बाल विवाह को रोकने में सफल नही हुआ।

---

1. आज, 1नवम्बर 1934 पृष्ठ 1.
2. पत्रिका चाँद, दिसम्बर 1934, पृष्ठ 23.

इसका प्रधान कारण यह था कि इस कानून को तोड़ने वालो की सारी जिम्मेदारी सरकार अपने ऊपर नहीं लेती है जब कोई व्यक्ति 50 रू० जमा करके अदालत में किसी अन्य व्यक्ति के विरूद्ध कानून तोड़ने का अभियोग चलता है।[1] तब इस कानून के अनुसार कार्यवाही इस बात को साबित करने का भार कि विवाहित लड़के लड़की की उम्र 18 और 14 से कम है अभियोग चलाने वाले के ऊपर होता है । बाल विवाह को रोकने के लिये यह आवश्यक है कि बाल विवाह सम्बन्धी कानून में उचित परिवर्तन कर दिये जायें । जिससे कानून तोड़ने वालो की जिम्मेदारी सरकार पर आ जाय।[2]

सन् 1931 में मनुष्य गणना रिपोर्ट के आधार पर भारत में 26 मार्च 1931 को विवाहित लड़के लड़कियों की संख्या क्या थी और 10 वर्षो के अन्तर्गत इस व्यवस्था में कितनी कमी और वृद्धि हुई, कौन से प्रान्तों या रियायतों में इसका प्रचार अधिक या कम हुआ किन-किन धर्मो को मानने वालो में यह प्रथा अधिक या कम प्रचलित हुई । कौन कौन सी जातियो ने इसका प्रचार रोकने के में थोड़ी बहुत सफलता प्राप्त कर ली हैं।[3]

फरवरी सन् 1931 में सम्पूर्ण भारत में 20 वर्ष से कम उमर के विवाहित लड़के लड़कियों की संख्या बहुत अधिक थी। भारत के अतिरिक्त संसार में क्या कोई

---

1. पत्रिका चॉद, नवम्बर 1934, पृष्ठ 34.
2. वही ........... पृष्ठ 25.
3. जनसंख्या रिपोर्ट 1931, पृष्ठ संख्या3.

ऐसा देश होगा जहाँ पांच वर्ष से कम उम्र की लड़कियों का भी विवाह कर दिया जाता हो।[1]

सन् 1931 में सन् 1921 की संख्या की तुलना में तिगुनी से अधिक थी। इस भयंकर वृद्धि का प्रधान कारण शारदा कानून ही है । यह कानून केन्द्रिय व्यवस्थापिका सभा द्वारा सन् 1929 में स्वीकृत हुआ।

भारत सरकार ने इस कानून को अमल में करने की तारीख एक अप्रैल सन् 1930 नियम की । कानून के शिकन्जे के बचने के उद्देश्य से सितम्बर 1925 में और मार्च 1930 के बीच भारत वर्ष के अनगिनत स्थानों में लाखों बाल विवाह हुये इस वर्ष मार्च के महीने में तो इतने बाल विवाह हुये जिनते शायद कभी ना हो। विवाहों के कारण वस्तुओं का मूल्य बहुत अधिक बढ़ गया था और विवाह कराने वाले पंडितों की कमी पड़ गई थी।[2]

**महिला कान्फ्रेंस**

विगत 26 नवम्बर को श्रीमती ब्रजलाल नेहरू के सभापतित्व, में दिल्ली

---

1. पत्रिका चांद नवम्बर 1934 पृष्ठ 24.
2. पत्रिका चाँद, नवम्बर 1934, पृष्ठ 26.
3. पत्रिका चाँद, जनवरी 1930, पृष्ठ 646

महिला कान्फ्रेस का अधिवेशन बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ स्वागताध्यक्ष श्रीमती अब्दुल कादिर तथा समानेत्री श्रीमती नेहरू के विद्धतापूर्ण भाषणों का उपस्थित महिला मण्डल पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा, कान्फ्रेस में कई महत्वपूर्ण और उपयोगी सुझाव पारित हुये।[1] जिनमें बाल-विवाह निषेध और पर्दा प्रथा के निवारण पर विशेष जोर दिया गया क्या बाल-विवाह निषेघ का विरोध करने वाले व्यक्तियों की आँखे इससे खुलेगी।

**प्रान्तीय महिला कान्फ्रेंस -**

गुजरात प्रान्तीय महिला कान्फ्रेस का चतुर्थ सम्मेलन 8 दिसम्बर सन् 1929 में अहमदाबाद में श्रीमती इन्ड दिवान की अध्यक्षता में बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुई। बाल-विवाह की घातक प्रथा की हानिया बताते हुए श्रीमती इन्दु दीवान कहती हैं आजकल समाज में कोई इस बात पर विचार नहीं करता कि विवाह के कारण नवदम्पत्ति के ऊपर कौन सी कठिनाइयाँ आ जाती है। 13 वर्ष की सुकुमार अवस्था में जबकि अन्य देशों की बालिकायें पाठशाला और खेल के अतिरिक्त कुछ नहीं जानती, भारतवर्ष की बच्चियाँ अपने पति के घर में बड़े बड़े उत्तर दायित्वों का बोझ सम्भालने के लिये भेज दी जाती है ।[2]

---

1. पत्रिका चाँद, जनवरी 1930. पृष्ठ 646.
2. पत्रिका चाँद, फरवरी, 1930, 764.

उनका शर्रीरिक विकास रूक जाता है उन्हें शिक्षा प्राप्त करने का समय नहीं मिल पाता और न उनकी मानसिक उन्नति नही होने पाती है रोगी अवस्था में हम इन बालिका माताओं से जिन्हें अपने कर्त्तव्य के उत्तरदायित्व का कुछ भी ज्ञान नही होता, कैसे आशा कर सकते हे कि हृष्ट-पुष्ट और बलवान मनुष्यों की एक जाति उत्पन्न कर सकेगी।[1]

श्रीमती दीवान कहती हे क यदि हम लोगों नेबाल-विवाह निषेघ के महत्व को भली भांति समझा होता तो हम लोग निश्चय ही यह इच्छा करते क व्यवस्थापिका सभा द्वारा पुनः एक नवीन बाल विवाह निषेघ कानून पास हो जो कन्यार्यों के विवाह वय को 14 से 15 तक के बदले 18 से 21 वर्ष निश्चित करे।

यदि संसार का कोई भी धर्म बरक विवाह व्यवस्था करता है तो श्रीमती दिवान सम्मति के अनुसार उस धर्म को मूल परिवर्तित करने की आवश्यकता है।[2]

स्त्रियों की आर्थिक स्थिति की आलोचना करते हुये एक सुयोग्य समानेत्री महोदया ने कहा - 'एक भयंकर-अपराधी को जितनी कठोरता पूर्वक लोहो की जंजीरों

---

1. पत्रिका चाँद नवम्बर 1934, पृष्ठ 26.
2. आज फरवरी 1930. पृष्ठ 2.

से बाँधा जा सकता है उसमें भी अधिक कठोरता और क्रूरता पूर्वक स्त्रियों को कानून की श्रृंखला से जकड़ दिया गया है स्त्रियों की आर्थिक परवशता ही उनकी करूणाजनक दुर्दशा का सबसे बड़ा कारण है स्त्रियों को अपनी जीविका चलाने के लिए न कही बाहर जाने का अधिकार है न पैतृक सम्पत्ति में हिस्सा इस तरह वाल-विधवाओं को बड़ी ही दुर्दशा का सामना करना पड़ता है ।[1]

श्रीमती एनी बेसेन्ट बाल-विवाह प्रथा के खिलाफ थी। उन्होने हिन्दू कालेज बनारस में विवाहित लड़कियों को प्रोत्साहन नही दिया उन्होने वाल विधवाओं के मामले में ही केवल विधवा-विवाह को समर्थ दिया के लिए प्रौढे विधवाओं के सम्बन्ध में पुर्नविवाह को समर्थन नही दिया। उन्होने नवभारत की सर्जना से स्त्रियों और पुरूषों दोनो के सम्मिलित प्रयासों की अभिलाषा किया। भारत में नारी नारी आन्दोलन को सशक्त नेतृत्व प्रदान किया।[2]

**विधवा विवाह**

किसी समय भारतवर्ष उन्नति के शिखर पर था परन्तु शोक से कहना पड़ता है कि उनकी आधुनिक दशा विपत्ति के मेघो से घिरी हुई है यहाँ की राजनैतिक,

---

1. पत्रिका चाँद, जनवरी, 1930. पृष्ठ संख्या 765.
2. कमला नेहरू (एन.ए.टीमेट. वायोग्राफी), पृष्ठ 17.

आर्थिक तथा धार्मिक सभी दशा शोचनीय है । भारतवर्ष आज स्वतंत्र नही है । वरन् दासता की जटिल बेड़िया उसे दु:ख दे रही हैं, आर्थिक विचार से इस संसार में कोई ही ऐसा व्यक्ति होगा जो भारत वर्ष की दरिद्रता को न जानता हो ।

धार्मिक अवनति इतनी हुई कि आप हम गर्व से यह नही कह सकते कि हमारा देश धर्म स्थान है परन्तु सबसे शोचनीय तथा निन्दनीय दशा हमारे समाज की है। हिन्दू समाज को दशा विशेषकर हिन्दू स्त्री समाज की दशा तो इतनी शोकजनक है कि उसका उल्लेख करने में भी लेखनी को क्लेश होता है वह समाज जिसमें प्रति सहस्त्र 175 विधवायें हों वह किसी प्रकार से सभ्य समाज कहलाने के योग्य नहीं है।[1] अगर इस पथ पर विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि भारतवर्ष में अन्य देशों की अपेक्षा विधवाओं की संख्या अधिक है बड़े दु:ख का कारण तो यह है कि बहुत सी स्त्रियाँ जो विधवा की श्रेणी में नही है विधवा श्रेणी में समाज द्वारा फेकी जा रही है मेरा अभिप्राय बाल विधवाओं से है । यदि आप सन् 1921 की जनसंख्याको देखे तों भारतवर्ष में एक से पांच वर्ष तक की 243260 पांच से 10 वर्ष की 143524। और दस से पन्द्रह वर्ष की 5354434 विधायें है यदि इनको जोड़ा जाय तो केवल 15 से कम आयु वाली विधवाओं की संख्या 7032935 है।[2]

---

1. आज, 17अक्टूबर, 1936, पृष्ठ3.
2. पत्रिका चांद, दिसम्बर 1931, पृष्ठ 235.

कारण है।[1]

1. बाल विवाह

2. अधिक आयु के पुरूषों का पुर्नविवाह

3. हिन्दू जाति के उच्च तीन वर्णो में विधवा विवाह प्रचलित नहीं है।

श्रीमती उमा नेहरू इस बारे में कहती है कि - विधवा विवाह प्रचलित कर देने से व्याभिचार बहुत कम हो जायेगा, विधवाओं में गुप्त व्याभिचार होना स्वाभाविक ही है और इसका फल यह होता है कि घर की अन्य साध्वी बालिकाओं पर इसका बुरा असर पड़ता है । नवयुवकों के जीवन पर इसका प्रभाव पड़े बगैर नही रहता है सबसे अधिक हानि जो इस विधवाओं के द्वारा हो रही है वह है भ्रूण हत्या । प्रति वर्ष असंख्य बच्चे पैदा होते ही ये विधवायें उन्हें मार डालती है बहुधा ऐसा भी देखा गया है कि ऐसी बहने गर्भपात का उद्योग करती है । इस प्रकार नाना प्रकार के रोगों से ग्रसित होकर ये दु:ख सहन करती हैं कितने ही लोग ऐसे विधवाओं को घर से निकाल देते हैं। उस दशा में ऐसी निरूपाय और असहाय बहने या तो उन नर पिशाचों के चंगुल में चली जाती है जो उनके क्षणिक रूप में तथा सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उन्हें आश्रय तो देते है पर कुछ काल बाद निकाल देते हैं इस अवस्था में बहनों को क्षिा मॉगने अथवा अन्य निन्दनीय कार्यो मे प्रवृत होने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं रहता है । कुछ बहिने ऐसी दशा में समाज से मुँह छिपाकर किसी सूदूर तीर्थ में जाकर वास करती है । नाना

---

1. पत्रिका चॉद, दिसम्बर 1931 पृष्ठ संख्या 236.

प्रकार के दुःखों को सहन करती है घृणा तथा अपमान का जीवन व्यतीत करती है अथवा आत्मदाह करके कलंकित और अपमानित शरीर का त्याग करती है।[1]

अधिकांश लोग इस विवाह को पाप संगत होने का कारण बताते है कि ऐसा विवाह धर्म विरूद्ध है।[2] परन्तु यह तो कायरता है और कायरता तथा आत्मबल हीनता छिपाने के लिये धर्म ढकोसला मात्र है । प्रथम बात तो यह है कि विधवा विवाह का धर्म विषय से बहुत कम सम्बन्ध है और यह प्रश्न मुख्यतः सामाजिक है और सामाजिक विषयों पर निर्भर है ऐसे सामाजिक नियम समयानुसार बदले गये है और बदले जा सकते है ।

लोग शास्त्र तथा धर्म की दुहाई देकर विधवा विवाह का विरोध करते है परन्तु उन्हें इस बात का ज्ञान नही है कि वेद और शास्त्रों में विधवा विवाह के धर्म सम्मत होने के प्रमाण - मौजूद है मै इस अवसर पर अर्थववेद के दो श्लोकों को प्रमाणार्थ उद्घृत करता हूँ पहला प्रमाण यह है ।

या पूर्व पति किवाथान्य विन्दते परम् ।<br>
पंचौदनं च तावजं ददातो न वियोषतः ।।[3]

---

1. आज 18 दिसम्बर, 1933, पृष्ठ 4.
2. पत्रिका चाँद दिसम्बर, 1931, पृष्ठ 237.
3. अथर्ववेद, काण्ड 9, सूक्त 5, मन्त्र 27.

इसका भावार्थ यह है कि - 'जो स्त्री पहले पति को पाकर उसके पीछे अन्य दूसरे को प्राप्त होती है वह दोनो पाँच भूतों को सींचने वाले ईश्वर को अर्पण होते हुये अलग न हों।'

दूसरा प्रमाण इसके बाद वाले श्लोकों में है वह इस प्रकार है -

समान लोके भवित पुनर्यवापरः पतिः ।

यो उजं पंचोदनं दक्षिणा ज्योतियं ददाति ।।[1]

अर्थात 'जो पुरूष विधवा से पुनर्विवाह करता है' उसक पद किसी प्रकार अन्य पुरूषों से कम नही समझा जाता है'

देश के आधुनिक अनेक विचारशील व्यक्तियों ने भी विधवा विवाह को आवश्यक तथा न्याय संगत समझकर इसे प्रचलित कराने का प्रयत्न किया है । इन विद्वानों तथा भारत के शुभ चिन्तकों ने इसको आवश्यक समझा और समाज को सच्चे पथ पर लानेका प्रयत्न किया।

इन लोंगों ने 1856 में एक कानून विधवा विवाह को जारी करने के लिए व्यवस्थापिका सभा से पास कराया जो 'विडो रीमैरिज एक्ट' के नाम से प्रसिद्ध है।[2]

---

1. अर्थवेद, काण्ड 9, सूक्त 9, मन्त्रा 28.
2. पत्रिका चाँद, दिसम्बर, 1931. पृष्ठ 238.

बहुत से लोग यह प्रश्न किया करते है कि प्राचीन काल में विधवा विवाह नही था और उस समय विघावायें किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करती थीऔर अब उन उपायोंका अवलम्बन क्यों नहीं कर सकती है ।[1]

पहली बात तो यह हे क मै इस विषय पर लोगों से सहमत नही हूँ कि प्राचीन समय में विधवा विवाह निषेघ था और मै समझता हूँ कि प्रथा उस समय में भी था उसके प्रमाण भी मिलते है पर मै थोड़ी देर के लिये यह मान लेता हूँ कि उस सभय यह प्रथा नही थी तब विधवाओं के लिये दो उपाय थे पहला वे अपने पति के साथ चिंता पर अपने शरीर भष्म कर देती थीं जिसके उदाहरण इतिहास में कम नहीं मिलते हैं दूसरा उपाय उनके लिये यह था कि जीवन पर्यन्त एक सन्यासी की तरह इश्वरों पासना में समय बिताती हुई शरीर त्याग देती थीं । ऐसी अवस्था में उनके लिये सांसारिक सुख सोष्ठवत् था अब इस प्रश्न पर विचार करना है कि उन्ही नियमों का आजकल भी क्यों न पालन किया जाय और क्यों विधवा विवाह किया जाय।[2]

इस प्रश्न के विचार में पहली बात तो यह है कि उस समय विधवायें बहुत कम होती थीं कही प्रति सहस्त्र में 10 या 15 विधवायें होती थीं। सो भी अधिक आयु वाली तथा वृद्धा जो जीवन यदि सती न हुई तो ईश्वरापासना और पुत्र - पौत्रादि की

---

1. पत्रिका चाँद, दिसम्बर 1931, पृष्ठ 239.

2. पायनियर 13, जनवरी 1932, पृष्ठ 5.

की देख रेख में व्यतीत कर देती थी उस समय तक वे सामान्य दशा में भी सांसारिक सुखों से तृप्त होकर विरक्त हो जाती थीं उनके किसी प्रकार से कुपथ में जाने अथवा कंलकित होने की लेशमात्र भी सम्भावना नहीं रहती थीं। दूसरी बात यह है कि उस काल में भारतवर्ष में दरिद्रनारायण का समावेश नही हुआ था और प्रजा की आर्थिक दशा अच्छी थी।[1] इसलिये विधवाओं की उपस्थिति से वंश वालोंको आर्थिक क्लेश की सम्भावना नहीं थी।

उस समय भारतवर्ष में हिन्दू राज्य था और अन्य धर्मावलब्यिों का आगमन नहीं हुआ था। इसलिये प्रथम तो उन विधवाओं की रक्षा का अच्छा प्रबन्ध था और नियमों द्वारा उन्हें दूषित करने वालो को कठिन दण्ड दिया जाता था। दूसरे कोई अन्य धर्मावलम्बी उन्हें प्रलोभन नही दे सकते थे। उस समय हिन्दू राज्य होने के कारण हिन्दू धर्म का पतन नही हुआ था। वरन् हिन्दू धर्म का उच्च रीति से पालन किया जाता था।

आजकल विधवाओं की एक बड़ी संख्या बाल विधवाओं की है । जिनके लिये सती होने का द्वार बन्द होने के कारण केवल सनयासी सा जीवन व्यतीत करना ही एक मार्ग रह गया है । इन अभागिन कन्याओं ने संसार - सुख का भोग तो किया ही

---

1. पायनियर - 16 जनवरी, 1932, पृष्ठ 3.

नहीं और उनहें उनके सुख तथा दुख का अनुभव भी नही है । यदि है तो केवल कुछ मास या वर्षो के अल्प समय का । इसलिये सांसारिक सुख से इनकी तृप्ती नहीं हुई है। ऐसी दशा में जीवन पर्यन्त काम वासनाओं से बचाये रखना मुझे दुष्कर प्रतीत होता है। प्रत्यक्ष देखने की बात है कि यौनावस्था में पर्दापण करते ही क्या पुरूष क्या स्त्री दोनो में कामाग्नि का प्रज्जलित होना प्रारम्भ हो जाता है और यह अग्नि 35 या 40 वर्षो तक बढ़ती रहती है। बहुधा इस अग्नि की तृप्ति न होने से साधारण मनुष्य अथवा स्त्री पागल तक हो जाते है ।[1]

ऐसी दशा में एक बाल-विधवा अथवा अल्प आयु में विधवा के लिये पति की मृत्यु होते ही इन नियमों का उचित रीतिनुसार पालन करना असम्भव सा प्रतीत होता है। यदि कभी ऐसा सम्भव है तो इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है कि उस अभागिन विधवा के वंशज उसे संयमी बनाने में कहाँ तक सहायता देते हैं। मुझे यहाँ यह लिखते हुये दुःख होता है कि समाज उनको अपना धर्मपालन करने की सहायता देने की अपेक्षा उनहें धर्म भ्रष्ट करता है। उनको अपने मार्ग से विचलित करता है ।

समाज अगणित अत्याचार इन निस्सहायों पर करता है और यहकहता है कि विधवा विवाह न हो और विधवायें सन्यासिनी की भांति रहें । परन्तु दूसरी ओर इसका कोई प्रबन्ध नहीं करता कि वह संयमी होकर रह सके । जिस घर में विधवा रहती है

---

1. पत्रिका चाँद, दिसम्बर 1931, पृष्ठ 239.

उसी घर में उसके भाई तथा बाप वैवाहिक जीवन का नग्न नाच करते हैं। संसार सम्बन्धी औचित्य की सीमा को भी पाट कर जाते है। इसे वह अभागिन विधवा हर समय देखती है । ऐसी अवस्था में कैसे उन विधवाओं के मन में नियन्त्रण एवं तपश्चर्या के भाव तथा विचार पुष्पित और फलित हो सकते हैं । इसके अतिरिक्त विधवा स्त्री का घर में कोई आदर भी नहीं करता है । उसी घर में उसे अनाथ की तरह सबका हास्य तथा तिरस्कार सहना पड़ता है । फिर भी घर वाले चाहते है कि वह संयमी बनी रहे ।[1]

आजकल विधवा आश्रम बनानेके प्रयत्न किये जाते हैं पर वहाँ भी सन्तोष जनक प्रबन्ध देखने में नही आता है । यदि उनका अच्छा प्रबन्धहो भी सके तो आप पाकृतिक भावनाओं को कैसे रोक सकते हैं ।[2]

इसलिए इन सब बातों पर विचार करने से मेरा निष्कर्ष यही है कि एक असम्भव आदर्श पर विधवाओं को बैठायें रखकर शतगुना पाप, व्याभिचार और भ्रूण हत्याओं का प्रसार अपनी अपनी ऑखों के सामने देखने से यह कहीं अच्छा है कि उनका विवाह कर दिया जाय। जिससे वे अपना जीवन सुख से, मर्यादा से और प्रेम तथा आदर से बिता सके। समयानुसार हिन्दू समाज को भी अपनें निमय बदलने चाहिए और समाज की स्थिति, मान, तथा उन्नति के नाम पर विधवा विवाह को प्रचलित करना चाहिए।[3]

---

1. पत्रिका चॉद दिसम्बर, 1931, पृष्ठ 246.
2. पायनियर, 14 अक्टूबर, 1932. पृष्ठ 5.
3. लीडर, 2 नवम्बर, 1932. पृष्ठ 6.

श्रीमती सरोजनी नायडू ने भी कहा कि विधवा विवाह कोई पाप नहीं है। विधवा विवाह करने से व्याभिचार बहुत कम हो जायेगा । यह उन्होने उस समय कहा जब नारी आवाज की समाज में कोई कीमत न थी औरआज की नारी की तरह जीवन का रास्ता साफ न था।

माँ बनकर भी वे नारी जागरण के आन्दोलन से दूर न रह सकीं। 'हैदराबाद खाद्य सहायक समिति' और 'नारी जागरण' के आन्दोलन में उन्होंने जो काम किया उसके फलस्वरूप 'द्वितीय सम्मेलन परिषद' की सदस्या बनकर इंग्लैण्ड गई।[1]

श्रीमती एनी बेसेन्ट का समाज सुधार में अत्यधिक योगदान रहा। उन्होंने बाल विधवाओं के मामले में ही केवल विधवा पुर्नविवाह को समर्थन दिया। लेकिन प्रौढ़ विधवाओं के मामले में पुर्नविवाह को समर्थन नहीं दिया। उन्होनें नवभारत की सर्जना में स्त्रियों और पुरूषों दोनो के सम्मिलत प्रयासों की अभिलाशा किया।[2]

---

1. ओंकार शरद, देश-देश के रत्न ...... पृष्ठ-269.

अन्तर्जातीय विवाह

आज बीसवीं शताब्दी में जब संसार चारों ओर राष्ट्रीय व सामाजिक उलट फेर में लगा है । हमारा देश अभी इस प्रश्न को हल नहीं कर सका कि समाज व राष्ट्र के लिये अन्तर्जातीय विवाह लाभदायक हैं या नहीं ।

हमारे देश व समाज के लिये यह एक ऐसा परिवर्तन है किआज दिन तक हम इसके लिये तैयार नही है जहाँ देश में इस परिवर्तन का जिक्र आया मानों समुद्र में आँधी सी चलने लगती है ।[1]

परिवर्तन सामाजिक जीवन का एक अति महान अंश है उन्नति केवल सुपरिवर्तन का नाम है परिवर्तन से विमुख होना मानों उन्नति का द्वार बन्द कर लेना है।[2]

परिवर्तन से डरने का वास्तविक कारण क्या है? परम्परा पूजन अथवा रीति-रिवाजों तथा संस्थाओं रीतिरिवाजों तथा संस्थाओं का अनुगमन उनके भले-बुरे होने का विचार न करते हुये केवल इसलिये करना कि वह पुरानी हैं इस विनाशक नियम की पुष्टि में दो बातें कही जाती है एक तो हमारे बाप दादा कुछ कम मूर्ख न थे जो कर

---

1. पायनियर - 17 नवम्बर, 1934, पृष्ठ 5.

2. आज - 18 अक्टूबर, 1937 पृष्ठ 3.

गये ठीक ही कर गये हैं। दूसरा यह कि मर्यादा से किंचित मा9 हट जाना हिन्दू जाति के व्यक्तित्व को खो बैठना है।

किसी रीति या प्रथा का केवल पुराना होना भला नहीं बना सकता है। हर स्थिति की भलाई या बुराई उसके परिणामों पर निर्भर होती है । किसी व्यक्ति का 125 वर्ष का होना या नहीं बताता है कि वह आदर्श व्यक्ति है । हमें उसे आदर्श सिद्ध करनेके लिये उसके जीवन चरित्र पर दृष्टि डालनी होगी। किसी वृक्ष का सहस्त्रों वर्ष का होना यह नहीं बताता कि उसके फल जहरीले और उसकी छाया मानव स्वास्थ्य के ख्याल से हानिकारक नही है? उसके हानिकार प्रभावों के विदित हो जाने पर भी अगर हम लोगों को उसके विषमय फलों उसके विनाशक छाया से बचने का अवसर न दें तो हम मूर्ख कहलाने के अवश्य अधिकारी है ।[1]

हम रीति रिवाजों के सम्बन्ध में केवल व्यवस्था पूजक है । हम यह नहीं सोचते कि यह रीति अच्छी है या बुरी। हम केवल यही सोचतेहै कि यह कितनी पुरानी है । उसके विनाशक परिणामों का निश्चय हो जाने पर भी उसके अनुकरण को हम अपना धर्म समझते है।

रहा हमारे देश के तैयार न होने का प्रश्न । इस सम्बन्ध में पहले तो

---

1. पत्रिका चांद, नवम्बर 1935, पृष्ठ 127.

हम इस बात को मानने को तैयार नहीं कि भारत अथवा हमारी जाति इन परिवर्तनों के लिये तैयार नही है जो उसके विकास उसकी उन्नति के लिये आवश्यक हो।[1]

वास्तव में जो प्रश्न इस समय देश व समाजके समाने है वह यह कि अन्तर्जातीय निवाह हमारे देश व समाज के लिये हितकर है अथवा नहीं हर सामाजिक प्रबन्ध का भला या बुरा होना उसके परिणामों पर निर्भर है।

अन्तर्जातीय विवाह हमारे देश के लिये कोई नई प्रथा नही है वैदिक युग में तो जातीय भेद ही न थे तब अन्तर्जातीय विवाह का प्रश्न ही क्या उठता? हम प्राय: सोचतेहै कि वैदिक युग की भारतीय जाति आर्य थी या कुछ और थी हम उसी जाति के सन्तान हैं तो हमने अपने बाप-दादा के रीतियों को कैसे छोड़ा । उनको छोडने के बाद आर्य कहलाने के अधिकारी कैसे रहे । यदि रहे तो विशेषकर फिर उन्हीं की छोड़ी हुई रीतियों के ग्रहण करने की चेष्टा करने में हम हिन्दू जाति से कैसे पतित हो जावेगें।[2]

मर्यादा के प्रश्न को छोड़कर हम अन्तर्जातीय विवाह के पहलू पर एक दृष्टि डाले तो एक बात निश्चित हो जाती है कि वैदिक समय से लेकर आज तक हमारे शास्त्रों ने अन्तर्जातीय विवाह को कितना ही निरूत्साहित क्यों न किया हो, नाजायज कभी नहीं कहा अब रही विनाशक मर्यादा की बात सो हम केवल यह चाहते

---

1. पत्रिका चाँद, नवम्बर 1935, पृष्ठ 128.
2. आज 10, अक्टूबर, पृष्ठ 5.

हमारी समाज व अदालतो को यह अधिकार हरे कि वह उस संस्था को जिसे हमारे शास्त्र जायज कहते हैं । मर्यादा की बिना पर नाजायज न बना सकें । यह हिन्दू जाति का विरोध नहीं - यह हिन्दू जाति को एक राष्ट्र बनाने की चेष्टा करना है ।

अब अनतर्जातीय विवाह के राजनैतिक पहलू को देखिए हमारे देश में बहुत कम विचारवान ऐसे होंगे जिनके हृदय जाती भेद की उत्पन्न की हुई घटनाओं को देखकर काँप न उठते हों ।[1]

मानव धर्म का एक मात्र उद्देश्य जगत में एकता समानता और पारस्परिक प्रेम को फैलाना होता है । जातीय नियम का प्रचार ने हमारी एकता, समानता और पारस्परिक प्रेम का नाश कर दिया है। मानव धर्म का एकमात्र उद्देश्य जाति को प्रबल बनाना है । वैदिक युग में जो एक क्षत्रिय जाति की वह अब 590 टुकड़ों में विभाजित हो गई । वह ब्राहमण जाति जो एकता की मर्यादा और हिन्दू जाति की मस्तक थी अब । हजार आठ सौ पिचासी टुकड़ों में विभाजित है। इस भिन्न भिन्न टुकड़ों में एक दूसरें की ओर से उससे अधिक द्वेष घृणा और शत्रुता है।[2] जितनी दो गैर मजहब वालों में आजकल पायी जाती है । दो ब्राहमण पारस्परिक व्यवहार में एक दूसरे से उतना ही विलग दिखाई पड़ते हैं जितना एक मुसलमान ईसाई से ।

---

1. आज , 10 नवम्बर, 1940, पृष्ठ 4.
2. पत्रिका चाँद, नवम्बर 1935, पृष्ठ 128.

जातीय भेद ने हमारे समाज के सौकड़ों टुकड़े कर दिये हैं ये टुकड़े एक दूसरे से वंचित रहने से आदर्श की अंधेरी गुफा में ऐसे बन्द है कि जातीयता के सूर्य की प्रभा इन तक पहुँचा ही नहीं पाती है ।

श्रीमती उमा नेहरू कहती है कि हमारा तो अजब हाल है जहाँ कोई देश भक्त इन गुफओं को विशाल करनेकी ओर इनमें जातीयता की प्रभा पहुँचाने की चेष्ठा करता है हम उसे अधर्मी और पश्चिमी समझ बैठते हैं । हम तो यह समझते है कि अधर्मी वह है जो देश विनाशक रीतियों का पालन करें । जो इन्हें जीवित रखने की धुन में अपने सुध विसार दें। जो आर्य जाति को अपनी प्राचीन एकता और गौरव प्राप्त करने में समर्थ न बनने दे।[1]

हिन्दू जाति में इतनी शक्ति न थी कि वह परिवर्तन को रोक सकती और न इतनी वृद्धि है कि इस परिर्वन को संसार गति का एक प्राकृतिक परिणाम समझ कर इसका सहर्ष स्वागत करे। जिस परिवर्तन को अन्य देश अपना सौभाग्य समझते हैं वह इस अभागी जाति को साक्षात काल रूप दिखाई पड़ता है । उन स्वतंत्र धैर्यशील व्यक्तियों को जिन्हें संसार पूज्यनीय समझता है । वह अपनी न्र्दियता से अपनी शरण छोड़ देने पर विवश कर देती है । इस समय हमारा समाज घोर आपत्तियों में पड़ा है ।

---

1. पत्रिका चाँद , नवम्बर 1935, पृष्ठ 129.

यदि अन्त: करण का साथ दिया जाय तो हिन्दू धर्म छूटता है । यदि अन्त:करण का साथ न दिया जाय तो धर्म ही निरर्थक हो जाता है ।

राष्ट्र समाज और व्यक्ति के अलावा अन्तर्विवाह का स्त्री जाति के साथ एक विशेष सम्बन्ध है मानव समाज में विवाह स्त्री की जीविका है।[1]

संसार का सुख एक ओर रहा केवल जीवित रहने के लिए वैवाहिक अवस्था ग्रहण करना आवश्यक है। ऐसी दशा में उस क्षेत्र का परिमित होना जिसमें इसके लिये पति चुना जाता है । मानो इसकी जीविका के क्षेत्र का परिमित होना है । यों देखियों कि यदि एक क्षत्री जाति हो, जिसमें एक करोड़ व्यक्ति हो तो हर बालिका के माता पिता के सामने लगभग बीस लाख पुरूष होगें जिनमें से ये अपनी पुत्री के लिय इच्छानुसार वर चुन सकेंगे। यदि इस जाति को छ: सौ हिस्सों में विभाजित कर दिया जाय तो उसी हिसाब से वैवाहिक क्षेत्र में केवल चार हजार पुरूष ही रह जायेगें। इससे भी घोर आपत्ति तब होगी जब इस जाति को विभाजित करते समय हम यह विचार न रक्खें कि इससे हर भाग में स्त्री-पुरूष की संख्या समान रहेगी।[2]

संख्या समान न रहने पर आपत्ति अधिकतर स्त्री के ही सिर पड़ेगी। यदि इसकी संख्या कम हुई तो वह गुलामों की तरह अधिक से अधिक मूल्य देने वालो के

---

1. लीडर - 4 दिसम्बर, 1933. पृष्ठ 5.
2. दैनिक जागरण- 25 जनवरी, 1934, पृष्ठ 3.

हाथों में बिकने लगेगी। यदि इनकी संख्या ज्यादा हुई तो इसे दो-दो, तीन-तीन अभागी सौतनों को अपनी जीविका का साथी बनाना पड़ेगा।

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कहा इन्ही सारी दुर्घटनाओं को मिलने के लिए केवल अन्तर्जातीय विवाह ही नही बल्कि भारतीय हर जाति में एक दूसरे से विवाह दोनो बहुत जरूरी है, यह बार बार कहना कि हमारा देश इन सुधारों के लिये तैयार नही है वह अपनी मर्यादा से किंचित मात्र हटना नही चाहता, किसी सुधार की चर्चा सुनकर उसे अत्यनत दुःख होता है ठीक व सत्य हो, लेकिन यह हमारी अज्ञानता है।[1]

हम अपने बुजुर्गो से यह पूछते हैं कि वह जानते हैं या नही कि असत्र-शस्त्र बाँधने की जो मर्यादा भारतीय जाति में इतिहास में प्रचलित थी इन हमारे बुजुर्गो ने एक बार में कैसे त्याग दी। हम यह नहीं पूछते कि आखिर इतने वर्ष से अस्त्र-शस्त्र न बाँधने की मर्यादा हमारे समाज में प्रचलित हो गयी है या नहीं हमारी हिन्दू जातिने अपना यह धार्मिक कर्तव्य पालन करने का क्या प्रबन्ध किया।[2]

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान ने भी अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन किया। भारत में नारी आन्दोलन के नारे 'हमारा अधिकार' की जन्मदात्री ये ही थीं

---

1. दैनिक जागरण 19,जनवरी 1957, पृष्ठ 6.
2. पत्रिका चाँद, नवम्बर 1934, पृष्ठ 23

नारी स्वतंत्रता के लिये सर्वप्रथम विगुल बजाने वाली आप ही थीं अपने अपने कर्त्तव्यों के प्रति जो जिम्मेदारी निभाने का परिचय दिया था। उसका यह प्रमाण है कि भारतीय नारी जो केवल पर्दे के पीदे अपना अस्तित्व समेटे. बैठी थी वह आज पर्दे के बहार है साहित्य के क्षेत्र में हैं, राजनीति में हैं, सरकार में है ।

भारत आकर उन्होने जात-पात के सारे बन्धनोंको तोड़कर निजाम सरकार के प्रधान चिकित्सक डा0 एम0 गोविन्द नायडू से विवाह किया । जब इन्होने अन्तर्जातीय विवाह कियसा उस समय आज की नारी की तरह जीवन का रास्ता साफ न था।[1]

श्रीमती इंन्दिरा गांधी ने भी जात-पात के सारे बन्धन तोड़कर श्री फिरोज गांधी से विवाह किया ाा ऐसा करके उन्होने अनतर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन दिया।

इन्दिरा जी की सामाजिक सेवाओं के लिये सन् 1953 में सयुक्त राष्ट्र ने 'मदर्स' एवार्ड देकर उन्हें सम्मानित किया था।[2]

सामाजिक सेवा के प्रति इन्दिरा जी का इतना लगाव था वे दिल्ली में इतनी व्यस्त रहकर भी बीसियों संस्थाओं के संचालन के भारत से दबी रहीं।[3]

---

1. ओकार शरद, देश के रत्न 2 पृष्ठ 269.
2. ओंकार शरद, देश देश के रत्न, पृष्ठ 280.
3. वही ........... पृष्ठ 281.

# अध्याय - 4

# अस्पृश्यता और अस्पृश्यता सम्बन्धी आन्दोलन

अध्याया - 4

# अस्पृश्यता के विरुद्ध धर्मयुद्ध

## अस्पृश्यता हिन्दू समाज का अमानुषिक विधान

प्राक ब्रिटिश काल के हिन्दू समाज में कई बड़े क्रूर और अजनतांत्रिक तत्व थे । कुछ हिन्दुओं का अछूतों के रूप में पृथक्करण अत्यंत अमानुषिक सामाजिक अत्याचार था। अछूतों को मंदिरों में जाने का या सार्वजनिक कुओं और तालाबों के इस्तेमाल का अधिकार नही था । उनके स्पर्शमात्र से ऊँची जातियों के लोग अपवित्र हो जाते थे । हिन्दू समाज के अंग होते हुए भी अछूत इस समाज से बहिष्कृत जैसे थे ।

अस्पृश्यत आर्यो की भारत विजय का सामाजिक परिणाम है। सामाजिक बात व्यवहार के फलस्वरूप पराजित जाति के बहुत से लोग आर्यो के प्रभाव में आये आर्यो की समाज व्यवस्था में समाविष्ट होने वालों में जो सबसे अधिक पिछड़े हुए या सबसे अधिक तिरस्कृत थे, उन्ही से अछूतों के पुश्तैनी जाति का निर्माण हुआ ।

हिन्दू समाज में सदियों से अस्पृश्यता का प्रचलन रहा है बुद्ध, रामानुज, रामानन्द चैतन्य , कबीर, नानक, तुकाराम और अन्य लोगो द्वारा चलाये गये व्यापक और आधार भूत मानवीय एवं धार्मिक सुधार आन्दोलनों का भी युगों की पुरानी इस अमानुषिक प्रथा पर कोई प्रभाव नही पड़ा । परंपरासम्मत, धर्मभूत यह प्रथा अपनी संपूर्ण वर्बर शक्ति के साथ सदियों तक जीवित रही ।

1. सर, ए.आर. देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 209.

विभिन्न राष्ट्रों और विभिन्न युगो में कई प्रकार के पदानुक्रमित मानवसमाजों का उद्‌भव हुआ । ये समाज वैषम्य और विशेषाधिकार की नींव पर बने थे लेकिन किसी भी अन्य समाज में हिन्दू समाज जैसा आत्यंतिक श्रेणीकरण और अधिकार वैषम्य नही था । हिन्दू समाज में अछूतों के साथ जैसा हुआ वैसा शारीरिक पृथक्करण शायद ही किसी अन्य समाज में रहा हो । अछूत का स्पर्श मात्र जघन्य पाप और जुगुप्सा का कारण था ।[1]

हिन्दू समाज में हलखोर, मुर्दा जानवर हटाने वालों और इस तरह के अन्य लोगों के कार्य पुश्तैनी अछूतों के जिम्मे थे ।[2]

विधि और समाज के अनुसार कोई भी दूसरा कार्य उनके लिए वर्जित था। दुस्सह परिस्थिति के विरुद्ध विद्रोह करने वाले अछूतों को सजा देने के लिए हिन्दू राज्य ने बहुत तरह के कानून बनाये । उन्हें पठन-पाठन या मन्दिर में प्रवेश का अधिकार नही था गॉव या शहर में उन्हें बस्ती से बाहर अलग इलाके में रहना पड़ता था । अछूतों का यह सामाजिक उत्पीड़न धर्म समस्त था और इसलिए उनकी जड़े बहुत गहरी थी । किसी भी अन्य विधान में आदमी इतना दलित और अपमानित नही

---

1. धुर्ये - पृ0 142
2. रामेश्वरी नेहरू - पृ0 4

हुआ । इस व्यवस्था में मानव व्यक्तित्व और प्रतिष्ठा के साथ चरम अत्याचार हुआ । अस्पृश्यता जैसे क्रूर सामाजिक तत्व का उन्मूलन भारत के सभी सुधार आन्दोलनों का प्रमुख लक्ष्य था और ऐसा होना स्वाभाविक था समाज सुधारकों के विभिन्न आन्दोलन विभिन्न कारणों से अस्पृश्यता निवारण की तरफ झुके, लेकिन इसकी आवश्यकता सबों ने महसूस की । यह सच है कि भारतीय समाज के पोंगा पंथियों ने जो बहुत बड़ी तादाद में थे अस्पृश्यता निवारण और दलित जातियों की अशक्तता के उन्मूलन का घोर विरोध किया । फिर भी समाज इन विषमताओं को समाप्त करने की दिशा में अग्रसर हो रहा था ।

### अछूतों की हालत में सुधार आन्दोलन

अस्पृश्यता जैसी अमानुषिक और अन्यायपूर्ण प्रथा के प्रति रोष प्रबुद्ध और शिक्षित भारतीयों के सामान्य प्रजातांत्रिक रोष का ही एक रूप था ।

ब्रहमण समाज , आर्य समाज, समाज सुधार, इंडियन नेशनल कांग्रेस जैसे राजनीतिक संगठन गांधी द्वारा स्थापित अखिल भारतीय हरिजन संघ जैसी गैर राजनीतिक संस्थायें इन सबने प्रचार शिक्षा और अन्य व्यवहारिक उपायों द्वारा अछूतों को सामाजिक धार्मिक और सांस्कृतिक अधिकार दिलाने की चेष्टा की ।

ये सारी संस्थायें विभिन्न तरीकों से दलित जातियों की अशक्तता समाप्त करने के प्रयास में लगी हुई थीं । मंदिरों और सार्वजनिक पाठशालाओं में प्रवेश और सार्वजनिक कुओं के उपयोग पर प्रतिबन्ध तथा निवास स्थान का प्रार्थक्य अछूतों की अशक्तता के कुछ प्रमुख रूप थे इन आशक्तताओं के विरुद्ध दलित लड़ने के अतिरिक्त डा0 अम्बेदकर ने दलित जातियों को राजनीतिक सेना के रूप में भी परिणत करने का प्रयास किया । उनके राजनीतिक दावें डा0 अम्बेदकर की वकालत के कारण मान भी लिए गये और इनके लिए 1935 में विधान में विशेष प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई ।

आर्य समाज ब्रहम समाज और अन्य धार्मिक सुधारवादी आन्दोलनों का उद्देश्य था कि वौद्धिक आधार पर भारतीय समाज का नवनिर्माण किया जाय । इनके नेताओं ने हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के प्रजातंत्री करण की दिशा में प्रयास किये । उन्होने उन घोर सामाजिक अनीतियों के विरुद्ध संघर्ष किया जिसने दलित वर्गो के हिन्दू पीड़ित थे और हिन्दू शास्त्रों की ही नई व्याख्या के आधार पर परंपरागत अनीतियों के उन्मूलन का उपदेश दिया ।

फिर राष्ट्रीय स्वातंत्र्य, राष्ट्रीय एकता और संयुक्त राष्ट्रीय शक्ति का ही प्रतिफल है राष्ट्रीय एका और ताकत की यह मांग थी कि आत्मविकास के लिए स्वंत्र हो और सबके लिए आत्मविश्वास के समान साधन और अधिकार हो ।

सावरकर जैसे हिन्दू 'हिन्दूराज' की माँग करते थे, उन्होने भी दलित जातियों की स्थिति में सुधार की चेष्ट की । इसकी वजह यह थी कि अछूत लगातार धर्म परिवर्तन कर इस्लाम या ईसाई धर्म में शामिल हो रहे थे । जिनके कारण हिन्दू धर्म को मानने वालों की संख्या कम होती जा रही थी और हिन्दू राज की माँग करने वालों के लिए यह बहुत बड़ा संकट था ।

इस तरह दलित जातियों के उद्धार का आन्दोलन लगातार बढ़ता गया और उनमें तेजी आती गई । आन्दोलन के उद्देश्य थे दलित जातियों की दयनीय आर्थिक स्थिति को सुधारना, उन्हें शिक्षित करना, उन्हें कुओं, पाठशालाओं और सड़कों के उपयोग और मंदिर में प्रवेश की स्वतंत्रता प्रदान करना । उनके लिए विशेष राजनीतिक प्रतिनिधित्व का अधिकार हासिल करना ।

हरिजनों ने कुछ संत्याग्रह आन्दोलन भी किये जिनमें उन्होने मंदिर प्रवेश पर जो प्रतिबन्ध था उसका विरोध किया और मंदिरों में जाने का प्रयास किया । इन आन्दोलनों और दलित जातियों को प्रजातांत्रिक माँगों के प्रति लोगों की सहानुभूति के कारण कई जगहों में हरिजनों को मंदिर में प्रवेश का अधिकार मिला ।[1]

---

1. इंडियन सोसल रिर्फामर पत्रिका- फरवरी 1934, पृ0 10

गांधी और उनके द्वारा स्थापित 1932 में आल इण्डिया हरिजन सेवक संघ और अन्य संस्थायें भी दलित जातियों के लिए व्यापक समाज सुधार सम्बन्धी और शैक्षिक कार्य कर रही थीं । संघ ने हरिजनों के लिए बहुत सारी पाठशालायें शुरू की । जिनमें कुछ आवासीय व्यावसायिक पाठशालाएं भी थी । इसके अतिरिक्त हलखोरों की यूनियने सहकारिता ऋण समितिया, आवास सम्बन्धी समितियाँ आदि भी निर्मित हुई ।[1] 1937 के बाद कुछ वर्षो तक विभिन्न प्रान्तों में जो कांग्रेस सरकारे बनी उन्होने भी दलित जातियों के उद्धार के लिए काफी अच्छे काम किये । बंबई की कांग्रेसी सरकार ने बांबे हरिजन टैंपल वर्शिप ऐक्ट पारित किया, जिससे मंदिरों के व्यवसथापकों को यह अधिकार मिला कि व्यवस्थापन की शर्तो के बावजूद अगर वे चाहे तो हरिजनों को मंदिरों में आने दे सकते हैं । सी0 पी0 और बिहार की कांग्रेसी सरकारों ने अपने प्रान्तों में हरिजनों के लिए, प्रामरी से लेकर विश्वविद्यालय तक निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध किया । कांग्रेस शासित कुछ अन्य प्रदेशों में भी कुछ इसी तरह की व्यवस्था हुई ।

हरिजनों ने कुछ सत्याग्रह आन्दोलन किये, जिनमें उन्होने मन्दिर प्रवेश पर जो प्रतिबन्ध था उसका विरोध किया, और मंदिरों में जाने का प्रयास किया । इन आन्दोलनों और दलित जातियों को प्रजातांत्रिक मांगों के प्रति लोगों की सहानुभूमि के

---

1. ए0आर0 देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ0 212

कारण कई जगहों में हरिजनों को मन्दिर में प्रवेश का अधिकार मिला ।[1]

त्रावनकोर, इंदौर, देवास जैसे कुद देशी राज्यों के शासकों ने आगे बढ़ कर राजकीय फरमान द्वारा राज्य के मंदिरों के सारे दरवाजे हरजिनों के लिए खुलवा दिये ।

अप्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश शासन जाति बन्धनों में लचीलापन लाने में सहायक सिद्ध हुआ । ब्रिटिश शासन की स्थापना से भारतीय सामाजिक संस्थाओं और मान्यताओं को आघात पहुँचा ।[2] समाज में नए सामाजिक मूल्यों और नैतिकता की स्थापना हुई । पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव के कारण भारतीयों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया । नवीन सामाजिक व्यवस्था के कारण भेद भाव की भावना में कमिया आई । नवीन विधि विधान लागू किये गये और नये न्यायालय स्थापित किए गये । इन न्यायालयों में विभिन्न जाति और धर्म के लोग न्याय प्राप्त करने के लिए उपस्थित होते थे । न्यायालयों में सबके साथ समान व्यवहार होता था । कानून की दृष्टि में न कोई छोटा था और न

---

1. ए0 आर0 देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ - 213
2. डा0 एस0 के0 पारिख एवं ए0 सी0 दहीभाते, भारत की सामाजिक आर्थिक संरचना एवं संस्कृति के तत्व, पृ0 128

कोई बड़ा । इसी प्रकार विभिन्न जाति और धर्म को लोग सरकारी कार्यालयों, व्यवसायिक संस्थाओं रेलगाड़ियो, स्कूलों और कालेजों, कारखानों आदि स्थानों में परस्पर मिलते जुलते थे । विचारों का आदान-प्रदान होता था। इससे लोग रूढ़िवादी विचारों में परिवर्तन आया । पाश्चात्य शिक्षा के कारण समाज में एक नवीन मध्यम वर्ग का उदय हुआ । इस वर्ग में वकील, डॉक्टर, इनजीनियर, पत्रकार, शिक्षक आदि सम्मिलित थे । इस वर्ग की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति परम्परागत जाति - व्यवस्था पर आधारित नही थी ।[1] अतएव इस वर्ग के लोगों ने परम्परा गत सामाजिक मूल्यों और मान्यताओं को अस्वीकार कर दिया और उन्हें चुनौती दी । पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार के कारण दलित वर्ग में भी आत्म सम्मान की भावना जागृत हुई । यूरोपीय सभ्यता और संस्कृति का भी भारतीयों पर प्रभाव पड़ा । जाति व्यवस्था के सम्बन्ध में उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन आया । विभिन्न जाति और धर्म के लोग जीवकोंपार्जन के लिए ब्रिटिश सेना में भर्ती हुए । ब्रिटिश सैनिक अधिकारी सवर्णो और अछूतों के साथ समानता का व्यवहार करते थे । अतएव सवर्ण एवं अछूत एक दूसरे के नजदीक आये ।

१९वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में अछूतोद्धार के लिए जातीय आन्दोलनो का सूत्रपात हुआ । इनके दो पहलू थे । इसका प्रथम पहलू था संस्कृतिकरण की प्रक्रिया ।

---

1. डा0 एस0 के0 पारिख एवं ए0 सी0 दहीभाते, भारत की सामाजिक-आर्थिक संरचना एवं संस्कृति के तत्व - पृ0 128

इसका द्वितीय पहलू था अधिक से अधिक सरकारी नौकरी प्राप्त करना । संस्कृतिकरण की प्रक्रिया से तात्प्य है कि निम्न वर्ग के लोगो ने अपने अनेक रीति-रिवाजों का परित्याग कर दिया और उच्च जाति के अनेक रीति-रिवाजों को अपना लिया । उन्होने अपने सामाजिक और आर्थिक स्तर को उठाने का प्रयास किया । उनमे समाज के उच्च जातियों के समकक्ष स्थान प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्धा की भावना जागृत हुई । अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा और सम्मान की वृद्धि के लिए उन्होने अधिकाधिक सरकारी नौकरी प्राप्त करने की कोशिश की । सरकारी नोकरी समाज में मान और सम्मान का प्रतीक बन चुकी थी । राजनीतिक लाभ के लिए विभिन्न जातियों के नेताओं ने उन्हें संगठित किया । उनकी जातीय भावनाओं को उद्दीप्त किया तथा उन्हे अधिकाधिक सरकारी नौकरिया प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया । ब्रिटिश शासकों ने भी जातीय संघर्ष को प्रोत्साहित किया । हिन्दुओं की बढ़ती हुई राष्ट्रीय भावना के वेग को रोकने के लिए आवश्यक था कि हिन्दुओं की विभिन्न जातियों को एक दूसरे के विरुद्ध खड़ा किया जाय । फलस्वरूप भारत के विभिन्न प्रदेशों में जातीय चेतना का प्रादुर्भाव हुआ जिसने जातीय संघर्ष को जन्म दिया ।[1]

---

1. डा0 एस0 के पारिख एवं ए0 सी0 दहीभाते, भारत की सामाजिक-आर्थिक संरचना एवं सांस्कृतिक तत्व- पृ0 129

**अछूतोद्धार के लिए प्रारम्भिक प्रयास**

19वीं शताब्दी में ब्रहम समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसाफिकल समाज तथा भारत सेवक समाज ने अछूतोद्धार के लिए प्रयास किया इस युग के समाज सुधारकों ने जाति व्यवस्था पर कठोर प्रहार किया और दलित वर्ग के उत्थान के लिए अनेक शैक्षणिक संस्थायें स्थापित की । उन्होने धर्म का द्वार बिना किसी भेदभाव के सभी जातियों के लिए खोल दिया । ब्रहम समाज के संस्थापक राजा राम मोहन राय ने जन्म पर आधारित जाति प्रथा और छुआ-छूत का विरोध किया ।[1]

इस संबन्ध में सबसे महत्वपूर्ण कार्य आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने किया उन्होने कहा- कोई जन्म से अछूत नही होता । अछूत तो अछूत रोगो से होता है । स्वामी जी के सम्बन्ध में गांधी जी ने कहा है-'स्वामी दयानन्द ने जो बहुत सी सम्पत्ति उत्तराधिकार में हमारे लिए छांड़ी है, उसमें उनकी अस्पृश्यता के विरुद्ध स्पश्ट घोषणा निःसंदेह ही एक बहुमूल्य निधि है ।' स्वामी जी का कथन था गुण और वर्ण के आधार पर निम्न जाति के लोगों को भी ब्राहमण क्षत्रिय और वैश्य

---

1. पायनियर - 19 अगस्त 1940, पृ0 -5

बनने का अधिकार है । इस प्रकार उन्होने जाति सम्बन्धी परम्परागत विचारों को अस्वीकार कर दिया। गमकृष्ण मिशन के संस्थापक स्वामी विवेकानन्द ने भी जाति व्यवस्था और छुआछूत की भावना को विरोध किया । उन्होने स्पष्टतः घोषित किया कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेद भाव के अध्यात्मिक उन्नति करने का अधिकार है क्योंकि ईश्वर की दृष्टि में सब समान है । राम कृष्ण मिशन का मुख्य उद्देश्य गरीबों औ र दलितों की सेवा करना ।[1]

### अछूतोद्धार के लिए राष्ट्रीय संगठन द्वारा प्रयास

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद राष्ट्रवादियों ने समाज सुधार के लिए 1887 में नेशनल सोशल कांफ्रेस की स्थापना की । राष्ट्रीय कांग्रेस के समान इसके अधिवेशन भी विभिन्न नगरों में संगठित किये गये और इन अधिवेशनों में समाज सुधार की समस्याओं पर विचार-विमर्श किया गया । 1887 और 1901 के बीच न्यायमूर्ति रानाडे और 1901 और 1920 के बीच चन्द्रावरकर ने राष्ट्रीय सामाजिक संगठन का नेतृत्व किया । अपने नवें अधिवेशन संगठन ने घोषित किया कि प्रत्येक राष्ट्रवादी भारतीय का कर्तव्य है कि वह अछूतो के उत्थान के लिए प्रयास करें । 1897 में राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी अछूतोद्धार पर विशेष

---

1. इंडियन सोसल रिर्फामर जनवरी 1939, पृ0 8

कार्य किया । कांग्रेस के अध्यक्ष शंकरन नैय्यर ने जाति-पॉति के बन्धनों के विरुद्ध आवाज उठायी । अपने 12वें अधिवेशन में संगठन ने महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज द्वारा अछूतोद्धार के लिए किये गये प्रयासों की पंशंसा की और उसे अपना पूर्ण समर्थन प्रदान किया । 1899 में संगठन ने मद्रास के जातीय संघर्ष की भर्त्सना की और दलित वर्ग की शिक्षा और उसके उत्थान या विशेष जोर दिया। इस प्रकार राष्ट्रीय सामाजिक संगठन विभिन्न संस्थाओं और एजेन्सियों के माध्यम से अछूतों के उद्धार के लिए प्रयास करती रही ।

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में अछूतोद्धार के लिए गांधी जी ने सबसे महत्वपूर्ण प्रयास किया । वे अस्पृश्यता को भारतीय समाज का सबसे बड़ा कलंक और स्वराज्य प्राप्ति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा समझते थे उन्होने अछूतो को हरिजन का नाम दिया और 'हरिजन' नामक एक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया । हरिजनों तथा दलित वर्ग के लिए उनके मन में बड़ी सहानुभूति थी । उनकी दयनीयक स्थिति के लिए उनके मन में बहुत पीड़ा थी । उन्होने कहा था, 'ईश्वर ने किसी को ऊँच नीच के निशान के साथ पैदा नही किया है और कोई भी धार्मिक ग्रन्थ जन्म से किसी मनुष्य की ऊँचाई का निमार्ण करता है । उसमें हम विश्वास नही कर सकते है।[1]

---

1. डा0 एस0के0 पारिख एवं ए0सी0 दहीभाते, भारत की सामाजिक-आर्थिक, संरचना एवं संस्कृति के तत्व- पृ0 132

आधुनिक भारत के निर्माण में उन्होने अस्पृश्यता के उन्मूलन पर सबसे अधिक बल दिया । वे मानते थे कि अस्पृश्यता मनुष्य और ईश्वर दोनो के प्रति घोर पाप है । उन्होने इस बात पर विशेष जोर दिया कि हरिजनों को हिन्दू मंदिर में प्रवेश दिया जाये और समाज में उन्हें समान दर्जा प्राप्त हो । असहयोग आन्दोलन के स्थगित हो जाने के बाद उन्होने अपनी सम्पूर्ण शक्ति हरिजनोद्धार में लगा दी । 1921 में उन्होने कहा कि अछूतो के उद्धार में ही स्वराज्य है । वे कहा करते थे कि यदि मेरा कोई अगला जन्म हो और तब तक अगर अस्पृश्यता न मिली हो तो मैं चाहूँगा कि हरिजन के घर में ही जन्म लूँ । उन्होन हिन्दुओं को सुझाव दिया कि वे अछूत बालकों को गोंद में ले और स्वयं एक अछूत बालिका को गोद लिया ।

1924-25 में केरल दलित संघ के नेता नारायण गुरु ने हिन्दू मंदिरों में अछूतो के प्रवेश के लिए सत्याग्रह प्रारम्भ किया । 1925 में गांधी जी स्वयं बंकोम गये और उन्होने सत्याग्रह का समर्थन किया । सत्याग्रह लगभग 20 महीने चला । अन्त में गांधी जी के प्रभाव के कारण त्रावनकोर सरकार से समझौता हो गया और सत्याग्रह समाप्त हो गया । वास्तव में यह हिन्दू मंदिरों में अस्पृश्यों को प्रवेश दिलाने का प्रथम सत्याग्रह आन्दोलन था ।

20वीं शताब्दी के तीसरे दशक में दलितों के नेता के रूप में डा0 भीमराव अम्बेदकर उभर कर आये । दलितों के उद्धार के लिए चल रहे आन्दोलन को उन्होने

अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान किया । उन्होने लन्दन के गोलमेज सम्मेलन में दलितो के लिए प्रथक निर्वाचन का अधिकार प्रदान करने के लिए मांग की । गांधी जी डा0 अम्बेदकर के इस मत से सहमत नही थे । उन्होने गोलमेज सम्मेलन में ब्रिटिश सरकार को चेतावनी दी कि यदि दलित वर्ग को हिन्दुओं से पृथक करने का प्रयत्न किया गया तो वे इसे सहन नही करेंगे । उन्होने कहा , 'मै स्वतंत्रता प्राप्त करने की खातिर भी अस्पृश्यों के हितों का बलिदान नही करूँगा । मैं स्वयं अपने सम्बन्ध में दावा करता हूँ कि मै, अस्पृश्यों की विशाल जमात का प्रतिनिधि हूँ' उन्होने कहा ' हम नही चाहते कि हरिजनों को एक पृथक वर्ग प्रदान किया जाय । सिक्ख इस स्थिति में रह सकते हैं, और उसी प्रकार मुसलमान व यूरोपियन भी । परन्तु हरिजन क्या सदैव हरिजन रहेंगे । मै चाहता हूँ कि अस्पृश्यता रहने की अपेक्षा तो हिन्दुत्व ही समाप्त हो जाये तो अच्छा है ।' परन्तु इसके बावजूद भी मेकडोनोल्ड निर्णय द्वारा दलितों के लिए पृथक निर्वाचन मंत्रो की व्यवस्था की गई। इस प्रश्कार हिन्दू जाति के ही अंग दलित वर्ग को विशिष्ट अल्पसंख्यक वर्ग की मान्यता दी गई । 20 सितम्बर 1932 को दलितों के लिए स्वीकृत पृथक निर्वाचन पद्धति के विरोध में गांधी जी ने परवदा जेल में आमरण अनशन प्रारम्भ किया । गांधी जी के अनशन से देश में चिन्ता व्याप्त हो गई ।[1]

---

1. डा0 एस0 के0 पारिख एवं एस0 सी0 दहीभाते, भारत की सामाजिक आर्थिक संरचना एवं संस्कृति के तत्व - पृ0 132

अंततः मदन मोहन मालवीय के प्रयत्नों से हिन्दू तथा दलित नेताओं ने मिलकर पूना में एक समझौता किया जिसे गांधी जी ने स्वीकार किया और अपना अनशन तोड़ दिया । इस समझौते के अनुसार सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों में से दलित वर्गो के लिए अधिक स्थान रखे गये दलितो के उद्धार के लिए 1933 में हरिजन सेवक संघ की स्थापना की गई तथा प्रस्ताव पारित किया गया कि ये परिषद निश्चित करती है कि अब भविष्य में हिन्दू जाति में किसी को जन्म देने से अस्पृश्य न समझा जायेगा और जिन्हे अब तक अस्पृश्य समझा जाता रहा है उन्हें अन्य हिन्दुओं की भांति ही मंदिरों , कुओ, पाठशालाओं सड़को और अन्या सार्वजनिक संस्थाओं के उपयोग का अधिकार होगा ।

हरिजन सेवक संघ को कांग्रेस दल तथा प्रगतिशील शिक्षित वर्ग का सक्रिय समर्थन मिला । इस संघ की साखाएं बड़े-2 शहरों में स्थापित की गई तथा समाज सुधार के बहुत से कार्यक्रम हाथ में लिए गये । इससे हरिजन उत्थान की दिशा में अनुकूल वातावरण निर्मित हुआ । दलित वर्ग में अपने उत्थान की आकांक्षाएं जागृत हुई । ब्रिटिश शासन से इस अवधि में अछूतों के लिए शिक्षा की व्यवस्था की तथा नौकरी में सुविधाओं की कुछ व्यवस्था की गई ।[1]

---

1. डा0 एस0 के पारिख एवं ए0सी0 दहीभाते, भारत की सामाजिक आर्थिक संरचना एवं संस्कृत के तत्व, पृ0 133

महात्मा गांधी तथा अम्बेडकर ने अछूतों के उत्थान के लिए अविस्मरणीय योगदान दिया । दोनो ने ही समानान्तर तथा अपने अपने ढंग से कार्य किया । गांधी जी के प्रयत्नों से 1935 में हरिजनों की एक अनुसूची तैयार कराई गई जिसका उद्देश्य विशेश सुविधाओं के लिए समूहो को बनाया जाना था। 1935 के विधान के तहत चुनी हुई प्रान्तीय सरकारों ने हरिजन उत्थान के लिए अनेक कार्यक्रम शुय किये । डा0 अम्बेडकर स्वयं दलित वर्ग थे वे मानते थे कि सामाजिक आधार पर समानता स्थापित हुए बिना दलितों का विकास संभव नही है ।[1]

डा0 भीम राम अम्बेडकर ने 1920 में छुआछूत की बीमारी से लड़ने के लिए 'मूक-नायक' नामक साप्ताहिक अखबार निकाला एक लेख में उन्होने लिखा था जब तक अछूतों के लिए मौलिक अधिकारों की गारन्टी नही होगी तब तक स्वराज्य का कोई लाभ नही होगा ।[2]

1924 उन्होने 'बहिष्कृत हितकारी सभा की' स्थापना में मद्द की वे इसकी प्रबन्ध समिति के अध्यक्ष बने इस सभा का उद्देश्य दलितो की कठिनाइयों को दूर करना था। 1927 में उन्होने 'बहिष्कृत भारत' नामक समाचार पत्र निकाला। इस पत्र के माध्यम से उन्होने दलित वर्ग को मानव अधिकारों के लिए संघर्ष को प्रेरित किया।[3]

---

1. पत्रिका चाँद, जनवरी 1935, पृष्ठ 765.
2. पायनियर 19, अगस्त 1943, पृष्ठ 5.
3. आज, 25 जुलाई, 1945, पृष्ठ 3.

25 दिसम्बर 1927 को उन्होने असमानता दमन तथा अन्याय पर आधारित मनुस्मृति को जलाया और हिन्दू सहिंता को पुनः निर्मित्त करने की मांग की । 1930 में उन्होने मन्दिरों पर सवर्णो के एकाधिकार को चुनौती दी। उन्होने नासिक मन्दिर तथा कालाराम मन्दिर में प्रवेश व पूजा के लिए सत्याग्रह किया। यह सन् 1935 तक चलता रहा उनका मानना था कि समाजिक आधार पर समानता स्थापित हुए बिना दलितो को विकास संभव नही है दलितो के उद्धार के लिए राजनैतिक अवसरों पर भी डा0 अम्बेडकर ने भाषण किया । लन्दन में आयोजित दोनो गोल मेज सम्मेलनों में उन्होने दलितो के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया । दलितों की समस्याओं के लिए किये जा रहे प्रयासों से अम्बेडकर के गांधी जी से मतभेद थे।[1]

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के अवसर पर अम्बेडकर ने दलितों के लिए पृथक निर्वाचन प्रद्धति की व्यवस्था को स्वीकार किया। गांधी जी ने इससे सहमत नही प्रकट की 30 अगस्त 1932 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने अछूतों के लिए पृथक प्रतिनिधि और चुनावों में खड़े होने के अधिकार की घोषणा की। इसके विरोध्र में गांधी जी ने आमरण अनशन प्रारम्भ किया । अम्बेडकर यद्यपि गांधी जी से सहमत नही थे फिर भी उन्होने गांधी जी की प्राण रक्षा तथा देश के समस्त नेताओं के दबाव में आकर पूना समझौता पर हस्ताक्षर किये।[2]

---

1. इन्डियन सोसल रिफार्मर अक्टूबर 1935, पृष्ठ 7.
2. पत्रिका चाँद, जनवरी 1934, पृष्ठ 334.

जब गांधी यरवदा जेल में आमरण अनशन पर थे तो इन्दिरा जी के मन में विचार आया यदि बापू मर गये तो क्या होगा इस प्रश्न से इन्दिरा का मन उबल उठा वे अपने सहपाठिनों के साथ यरबदा जेल में बापू से मिलने गयी लौट कर इन्दिरा ने खुद एक दिन का अनशन रखा, अछूत समस्या पर एक लेख लिखा बापू के अनशन के सम्बन्ध में पूना में जो प्रार्थना सभा हुई इसमें इसी विषय पर भाषण दिया । इन्दिरा ने सभा में जोशिले शब्दों में कहा 'आज बापू को प्रार्थनाओं की जरूरत नही है उन्हें हमारे काम की जरूरत है उन्हें बचाने के लिए कुछ करना चाहिए'

दूसरे दिन इन्दिरा ने स्कूल की भंगिन की लड़की को अपने पास बुला लिया, अपने पास रखा, अपने हाथो से नहलाया, बाल में तेल डाला, कंधी की, फिर अपने जेब खर्च से उसके लिए नये कपड़े खरीदे, अपने साथ खान खिलाया, और रात को अपने पास ही सुलाया, ऐसा करते हुए इन्दिरा अनुभव कर रही थी कि वे बापू का काम कर रही हूँ । इस घटना से इन्दिरा के मन से भेदभाव और जात पात, छुआ-छूत का भाव सदा के लिए मिट गया ।[1]

राननीति के अलावा इन दिनों इन्दिरा जी ने सामाजिक कार्यो में भी खूब दिलचस्पी दिखाई और उस पर काफी समय देती थी। उन्होने गरीब बच्चों के लिए,

---

1. ओकांर शरद, इन्दिरा गांधी, सन् 1934, पृष्ठ 60.

'बाल सहयोग' नामक एक संस्था का भी निर्माण किया। इसके निर्माण की भी एक कहानी है। हुआ यूं कि सन् 1952 में इन्दिरा जी एक बार कनाट प्लेस में खरीददारी कर रही थी तभी फटे कपड़ों में एक लड़का जो कंघिया बेच रहा था उनसे एक कंधी खरीदने की जिद करने लगा। उन्हें कंधी की जरूरत न थी वे जिन दुकानों में गयी वह लड़का पीछे पीछे लगा रहा अन्त में उबकर जान छुड़ाने की खातिर उन्होने एक कंधी खरीद ली उन्होनें गौर बच्चे को देखा और पूछा तुम स्कूल कब जाते हो तो बच्चे ने जवाब दिया दिन भर काम करता हूँ कंघियां बेचकर रोज दो रूपयें कमा लेता हूँ।[1] इसी

इसी घटना से इन्दिरा जी ने प्रेरणा ली। सोचा कि ऐसे बच्चों के लिए क्या किया जाय फिर उन्होने बच्चों के लिए सहकारिता के माध्यम से 'बाल सहयोग की स्थापना की। यहाँ बच्चे दस्तकारी, बढ़ईगीरी, सिलाई, बेत, का काम आदि करके काफी पैसे कमा लेते थे और मिलजुलकर काम करने की सहयोगी भावना अपने में उत्तपन्न करते थे।

श्रीमती उमा नेहरू ने भी छुआ-छूत की भावना का विरोध किया उन्होने ने कहा गुण और कर्म के अनुसार हरिजनों को ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बनने का अधिकार

---

1. ओंकार शरद, इन्दिरा गांधी, पृष्ठ 80.

है। उन्होने कहा कि शूद्रों को वेद पढ़ना चाहिए। उन्होने इस बात पर अक्रोश प्रकट किया कि अनेक हरिजन स्वर्णो के अत्याचारों से तंग आकर इस्लाम तथा ईसाई धर्म स्वीकार कर लेते हैं इसके लिए उन्होने स्वर्णो की भर्त्सना की । उन्होने कहा अछूतों को समाज में सम्मानपूर्ण स्थान मिलना चाहिए।[1]

---

1. पत्रिका चांद, दिसम्बर 1935, पृष्ठ 272.

## अध्याय - 5

# स्वतंत्र भारत में शिक्षा साहित्य एवं अस्पृश्यता सम्बन्धी सुधार

## अध्याय - 5

## स्वतंत्र भारत में शिक्षा, साहित्य एवं अस्पृश्यता

### शिक्षा

शिक्षा की वर्तमान दुव्यवस्था पर विचार करते हुए श्रीमती दीवान बड़े करूणामय शब्दों में कहती है मुझे यह विश्वास हो गया है कि सरकार की शिक्षा नीति का सम्बन्ध शिक्षा से कम और राजनीति से अधिक है । निःसन्देह यह नीति हमारे राष्ट्रीय विकास में बाधक है शिक्षा ही समाज की उन्नति का प्रधान साधन है । जो सरकार शिक्षा का प्रबन्ध करने से इनकार करती है उसके प्रति हमारे मन में कौन से भाव उठ सकते हैं निःसन्देह यह भाव प्रेम और श्रद्धा के नही हो सकते । स्त्री शिक्षा के सभी समर्थकों और पक्षपातियों को यह बात भली-भांति समझ लेना चाहिए कि भारतीय देवियों और ललनाओं को शिक्षित बनाने के मंगलमय कार्य में न तो उन्हें ब्रिटिश सरकार से कोई विशेष सहायत मिल सकी है और न अपने ही कट्टर भाइयों से सहानुभूति की आशा रखनी चाहिए। हमें एक ओर एक संगठित सरकार की उपेक्षा और दूसरी ओर अपने ही पाश्र्वदर्शी भाइयों के विरोध का सामना करना है।

समाज सुधार का कार्य ही ऐसा है उसमें किसी तरह के सहानुभूति अथवा सहायता की आशा नही करनी चाहिए। समाज सुधार का अक्षम्य अपराध करने के लिए महात्मा क्राइस्ट को सुली पर चढ़ना पड़ा और ऋषि दयानन्द को हलाहल का पान करना

पड़ा था। इसलिए समाज सुधार के कंटकाकीर्ण क्षेत्र में प्रवेश करने वाले कार्यकर्ताओं को स्वयं अपनी ही शक्ति पर निर्भर रहना चाहिए। यह संभव है कि भारतीय स्त्रियों के उद्धार का प्रयत्न करने में क्राइस्ट और दयानन्द की भांति हमारे कुछ आधुनिक कार्यकर्ताओं को भी अपना सर्वत्र निछावर करना पड़े । एक विदेशी सरकार से तो इस विषय में सहायता की आशा किसी अवस्था में नही की जा सकती । ब्रिटिश सत्ता का प्रधान अवलम्बन हमारी मुर्खता और दुर्बलता ही है । ब्रिटिश नीतिज्ञ कभी भी किसी ऐसे उपाया का अवलम्बन नही करेगें जिससे भारतीयों में शिक्षा का प्रचार हो, उनकी बुद्धि बढ़े, और उन्हें अपनी विशाल शक्ति का पता लग जाये।[1]

भारत में नारी शिक्षा सामाजिक एवं राजनैतिक प्रगति के लिए पुरूष शिक्षा के समान ही महत्वपूर्ण हैं । देश की प्रगति उस दशा में कभी भी संभव नही है यदि देश की आधी जनसंख्या अज्ञानता के अंधकार में नारियों के रूप में शेष रहती है।

प्राचीन काल में नारियों की शैक्षणिक तथा सामाजिक दशा चरमोंत्कर्श को प्राप्त थी भारत के इतिहास का मध्य युग स्त्रियों के लिए एक अंधकार युग था उन्हें अनेक सामाजिक बुराइयों के कारण प्रताड़ित किया जाता था । पर्दाप्रथा, सती प्रथा,

---

1. पायनियर , 18अगस्त, 1948, पृष्ठ 5.

बाल-विवाह, निरक्षरता, आदि उनकी अनेक यातनाओं के कारक स्वरूप थे। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ से और विशेष रूप से 20वीं सदी के स्वतन्त्रता एवं जनजागरण आन्दोलनों में भारत की नारियों में सामाजिक राजनैतिक, एवं शैक्षिक जागृत उत्पन्न किया। और फलस्वरूप पं0 विजयालक्ष्मी, श्रीमती इन्दिरागांधी, श्री मती सुचेता कृपलानी, श्रीमती सरोजनी नायडू, श्रीमती महादेवी वर्मा; आदि विदुषी महिलायें साहित्यिक, राजनैतिक, तथा सामाजिक उत्कर्ष की उच्चतम तथा अनुपम प्रतीक बन सकी। उत्तर प्रदेश ही क्या समूचे भारत तथा विश्व की अनेक नारियाँ वर्तमान में उनसे मार्गदशन प्राप्त कर विज्ञान साहित्य, राजनीति, शिक्षा, समाज सुधार, एवं सभी क्षेत्रों में अनुपम व अग्रणी बन रही है।

'भारत की स्वतंत्रता के पश्चात संयुक्त प्रान्तों में महिलाओं की उच्च शिक्षा में अनवरत प्रगति किया । यहाँ की सरकार ने बालिका शिक्षा हेतु बहुत से कार्यक्रमों को चलाया, विशेष रूप से नगरों में [1]

भारत सरकार ने 1948 में विश्व विद्यालय शिक्षा आयोग का प्रो0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अध्यक्षता में गठन किया । इस आयोग ने नारी-शिक्षा के सम्बन्धमें बहुत ही व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। आयोग ने यह विचार प्रदान किया कि महिलाओं

---

1. दि लीडर - 1948, सितम्बर 8, पृष्ठ 5.

को पुरूषों के समान ही सभी प्रकार की सुविधायें देनी है और सम वातावरण महा विद्यालयों में प्रदत्त किया जाना चाहिए।[1]

आयोग ने संस्तुत किया कि महिलाओं की शिक्षा में किसी प्रकार की कटौती नहीं होनी चाहिए। पुरूषों के समकक्ष ही महिलाओं के जीवन और आवश्कताओं पर विचार किया जाना चाहिए। उपयुक्त शैक्षिक निर्देशन द्वारा नारियों को समाज में समुचित नागरिक और नारी का अधिकार तथा स्थान दिलाने का प्रयास किया जाना चाहिए।[2]

आयोग ने यह भी संस्तुति प्रदान किया कि नारी-जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार ही नारी शिक्षा का पाठ्यक्रम होना चाहिए किया गया ।

महाविद्यालयों माध्यमिक विद्यालयों और प्राथमिक बालिका विद्यालयों की संस्था में अत्यधिक वृद्धि हुई। सामान्य शिक्षा तथा व्यवसायिक शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई । सामान्य शिक्षा तथा व्यवसायिक शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं की संख्या में आशातीत वृद्धि सम्भव हो सकी ।

---

1. रावत पी.एल., हिस्ट्री आफ इण्डियन एजूकेशन 1955.
2. श्रीवास्तव वी.डी. ए डेवलपमेन्ट ऑफ माडर्न इण्डियन एजूकेशन,1955पृ340

सामान्य शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा का सम्पूर्ण ढॉचा ही बदल कर क्रियान्वित किया गया । इसी समयावधि में'पेडा गागिकल रिसर्च संस्थान' एवं व्यूरों आफ साइकोलाजी संस्था की स्थापना, इलाहाबाद में की गई। गोरखपुर, कानपुर, मेरठ, जौनपुर, जैसें - नगरों में विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। इन संस्थाओं के स्थापना फलस्वरूप बालक-बालिकाओं की शिक्षा में पर्याप्त वृद्धि हुई । आज भी पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं की शिक्षा का प्रतिशत् बहुत कम हैं । महिलाओं की शिक्षा का प्रतिशत् बहुत कम हैं। महिला-शिक्षा की प्रगति होने के पश्चात भी अभी उसके विस्तार के लिए बहुत बड़ा क्षेत्र शेष हैं। आज भी उत्तर प्रदेश नारी-शिक्षा के क्षेत्र में अन्य प्रान्तों से पीछे है। नारी समाज के समग्र विकास एवं उन्नयन हेतु शिक्षा की महत्ता सर्वाधिक है।

नारी शिक्षा की अनिवार्यता इस कारण और अधिक है कि सुशिक्षित नारियों हीं समाज में कुरीतियों कों समाप्त करने सक्षम हो सकती का विस्तार और तृतीय प्रशिक्षण सुविधा के विस्तार का कार्यक्रम तैयार किया गया ।

सरकार ने सन् 1964 जुलाई के प्रस्ताव के के आधार पर श्री डी0एस0 कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग 1964-66 का गठन किया। आयोग ने संस्तुत किया कि पुरूषों के समक्ष ही स्त्रियों को सारी सुविधायें कालेजों में उपलब्ध होनी चाहिए। सामान्यतया छात्राओ को नागरिक एवं नारी के रूप में अपनी पहचान समाज में बनाने हेतु सहायता सुलभ होनी चाहिए। आध्यापिका को अध्यापक के समान वेतन प्रदान किया जाना चाहिए।

'सह शिक्षा के सम्बन्धमें की गई सभी संस्तुतियाँ निर्धारित समयावधिमें क्रियान्वित कर दी गई।[1]

इस प्रकार केन्द्रीय सरकार की नीतियों का प्रान्तीय सरकार पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा और नारी शिक्षा के विकास के लिये विशेश प्रयास किये गये ।

उत्तर प्रदेश ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात शिक्षा के क्षेत्र में और विशिष्ट रूप से नारी शिक्षा के क्षेत्र में सतत वृद्धि और प्रकति किया । संस्थाओं में कई गुना वृद्धि से यह भली प्रकार प्रदर्शित होता हैं बालिका शिक्षा को गति प्रदान फसे हेतु पुराने माध्यमिक विद्यालयों को महाविद्यालयों में परिवर्तित द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत बालिका एवं महिला शिक्षा हेतु विशेष बल दिया गया और परिणामस्वरूप अनेक प्रकार की सुविधायें वृहद स्तर पर प्रदान की गयी । इस योजना के अन्त तक उत्तर प्रदेश में विश्वविद्यालयों की संख्या 9 हो गयी। महाविद्यालयों, व्यवसायिक एवं प्रशिक्षण विघालयों की संख्या में कई गुनी वृद्धि हो गयी । दूसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत अन्तिम समय मे यह निर्णय लिया गया कि पंचवर्षीय योजना मे बालिका शिक्षा के के उन्नयन हेतु विशिष्ट कार्यक्रम तैयार किया जाय ।

---

1. डा0 कौर कुलदीप, 'एजूकेशसन इन इण्डिया (1981-1985) पालसीज, प्लानिंग एण्ड इम्लीमेन्टेशन' अक्टूबर 1985, पृष्ठ 207-240.

तृतीय पंचवर्षी योजना के अन्तर्गत भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय ने प्रान्तों में महिला शिक्षा परिषद के गठन का निर्देश दिया और परिषद के संचालन हेतु उप शिक्षा निदेशिका की नियुक्ति करने की सुस्तुति किया और इस प्रकार बालिका शिक्षा के उन्नयन हेतु विशष्ट कार्यक्रम तैयार किया गया इस प्रकार बालिका शिक्षा को कार्यक्रम में प्रधानता दी गई । इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ही उत्तर प्रदेश में प्रथम प्राथमिक शिक्षा की व्यापकता, द्वितीय-बालिका शिक्षा उन्हें दिशा निर्देश तथा राय प्राप्त करने के लिए उपयुक्त सुविधायें प्रदत्त होनी चाहिए। महिला शिक्षा को पुरूष शिक्षा के समान ही समान कार्यके लिये समान वेतन दिया जाना चाहिए। विश्व विघालयों में सह शिक्षा का प्रावधान हो सकता हैं।[1]

सन् 1950 में सयुंक्त प्रान्त का नाम परिवर्तित करके उत्तर प्रदेश रखा गया। शिक्षा के क्षेत्र में इसी समय से अमूल चूक परिवर्तन के लिये अनेक प्रकार की क्रान्तिकारी योजना में तैयार की गयी और चलाई गई । सामान्य शिक्षा के क्षेत्र में सम्पूर्ण शैक्षिक ढॉचा पुनर्गठित करके क्रियान्वित किया गया ।

सन् 1951 में सितम्बर मास में सरकार ने मूथम समिति का गठन किया जो इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के क्षात्रों के पाठन क्रिया खोज तथा छात्र कल्याण के स्तर से सम्बद्ध

---

1. रावत, पी.एन. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एजूकेशन 1955, पृष्ठ 457.

थी'[1]

भारत सरकार ने सभी विश्वविद्यालयों को आर्थिक अनुदान देने के लिए 'यूनिवर्सिटी ग्रान्ट कमीशन' की स्थापना भी शिक्षा के उन्नयन हेतु किया ।' इस इस प्रकार का आयोग विश्वविद्यालयी शिक्षा के उन्नयन एवं विकास के लिये मूलाधार हैं।[2]

नारी समाज जो वर्तमान में सभी प्रकार के शोषणों को शिकार बना हुआ हैं। उसका उद्धार करने में तब तक सक्षम नहीं हैं जब तक नारियों उत्पीड़न और सामाजिक कुरीतियों के निवारण हेतु स्वयं प्रयत्नरत नहीं होती हैं। इस हेतु इनमें सामुहिक चेतना जागृत होनी चाहिए यदा कदा कुछ महिलाओं द्वारा किये प्रयास कदापि प्रर्याप्त नही हैं।

---

1. रावत, पी.एन. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एजूकेशन 1955, पृष्ठ 623(624.
2. अमृत बाजार पत्रिका पत्रिका 10 नवम्बर 1952 पृष्ठ-2.

## साहित्य

### नवीन काव्य क्षेत्र में महिलायें

साहित्य की जन्मदात्री हमारी महिलायें ही है ठीक उसी प्रकारजिस प्रकार संसार की विघात्री हमारी मातायें हैं अतएव संसार का साहित्य पुरूष जातिका उतना आभारी नही हैं जितना अपनी माताओं और बहिनों का ।

नारियों ने प्रत्येक युग की जागृति में जग कर प्रत्येक क्षेत्र में अपना प्रगतिशील पग आगे बढाया है फिर साहित्य में ही वे अपनीगति को शून्य क्यों रहने देती हैं? फलतः हम इस क्षेत्र में भी उनके उज्ज्वल उत्साह और ज्वलन्त स्फूर्ति का यथेष्ट परिचय पाते हैं ।

जि‍ा प्रकार नवीन भारत की आवाज ने शताब्दियों से सोईहुई नारी जाति को राष्ट्रीय क्षेत्र में जगा दिया है उसी प्रकार साहित्य क्षेत्र में भी अतएव राष्ट्रभाषा हिन्दी की पूजा हमारी बहिने भी उसी तन्मयता से कर रही है जिस एकाग्रता से हमारे पुरूष लेखक और कवि।[1]

---

1. पत्रिका चांद दिसम्बर, 1934, पृष्ठ, 261.

सम्प्रति हिन्दी के गद्य और पद्य दोनो ही विभाग में हमारी महिलाओं ने लिया हैं परन्तु गघ में कम और पघ में अधिक कारण महिलाओं की भावुकता प्रधान प्रवृत्ति काव्यमयी ही है। पन्त जी के शब्दों में - 'आधुनिक भारती नारी जीवन की संकीर्णता, वास्तविकता के अभाव के कारण वैसे ही नारी जाति को काल्पनिक आधार ग्रहण करने को विवश करती हैं।' अस्तु।

हिन्दी कविता अनेक परिवर्तनों के बाद आज जिस नूतन दिशा की ओर उन्मुख है हमारी कवियित्रियों की दृष्टि भी उसी ओर है। वर्तमान परिवर्तन युग की कविता, निस्सन्देह हमारे साहित्य 'कविता' की अवतारणा कर रही है । विभिन्न रूचि अनुसार मतभेद तो स्वाभाविक ही हैं।

हमारे नवयुग की हिन्दी कविता में ये महिलायें विशेष उल्लेखनीय हैं - श्रीतोरन देवी शुक्ल 'लली' श्री सुभद्रा कुमारी चौहान, श्री महादेवी वर्मा श्री तारादेवी पाण्डेय, स्वर्गीय श्री पुरूषर्थवती देवी आर्य' श्री रामेश्वरी देवी चकोरी श्री रामेश्वरी गोयल श्री लीलावती देवी झाँ 'सत्य' इसके अतिरिक्त श्री दिनेश नन्दिनी चोडिया एक मनोहर गद्य काव्य लेखिका हैं । श्री विष्णु कुमारी श्रीवास्तव 'मन्जु' श्री कुमारी राज राजेश्वरी देवी, नलिनी री रत्नकुमारी देवी काव्य तीर्थ की प्रसिद्ध कवियित्री हैं । 'लली' जी उक्त

कवियित्रियों में सबसे अधिक अवस्था की अथवा सबसे पहले लिखने वाली कवयित्री हैं। इसीलिए प्राचीन और नवीन दोनो ही शैलियों की बहुत सी कविताएँ आपने लिखी हैं। आपकी कविताएं देश काल के साथ साथ चलती है। किसी जमाने में आपने समस्या पूत्तियाँ की फिर राष्ट्रीय कविताएं लिखी अब कभी कभी नये ढंग की भावनाओं का भी अनुसरण करती हैं । नयी शैली में राष्ट्रीय कविताए ही आपने अधिक लिखी हैं । भाव सीधे साधे हैं और आदर्शवाद से पूर्ण हैं [1]

री सुभुद्रा कुमारी चौहान, कवि और कहानी लेखिका दोनो ही है । कविता और कहानी दोनो में ही आपको भरपूर पक्ष मिला हैं तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा दोनो पर ही सेकसरिया प्राइज का सम्मान आप पा चुकी हैं ।

श्री सुभुद्राकुमारी जी की कवितायें बहुत सीधी सादी हैं उनकी स्वाभाविकता ही उनकी मार्मिकता हैं

---

1. धर्मयुग - अगस्त 1950, पृष्ठ 10.

नित्य जीवन की चिरपरिचित मनोवृत्तियों को आपने उनके यथार्थ रूप में कविता वद्ध कर दिया हैं ।

खूनी भाव उठे उसके प्रति जो हो प्रिय का प्यारा'
उसके लिये हृदय यह मेरा बन जाता है हत्यारा'

इन पक्तियों में मोहाशक्त हृदय का एक स्वभाविक उद्गार हैं । अतएव इन पक्तियों को अपने हृदय के भीतर सहज ही ग्रहण कर लेते हैं मानों हृदय की बात हों ।

झॉसी की रानी शीर्षक राष्ट्रीय कविता आपकी एक ऐसी अमर कृति हैं कि जब जब भारतीय इतिहास के पृष्ठ उल्टे जायेंगे । तब तब उनके किसी परिच्छेद में (झॉसी की रानी) भी रत्नवारों का एक संगीत प्रतिध्वनित करती रहेगी।

झांसी की रानी को अतिरिक्त, प्रणय और वातसल्य सम्बन्धी आपकी कुछ कवितायें भी अपनी स्वाभाविकता में बहुत अच्छी बन पड़ी हैं यथा -

मैं बचपन को बुला रही थी
बोल उठी विटिया मेरी

नन्दन बन सी फूल उठी

यह छोटी सी कुटिया मेरी ।।

प्रणय सम्बन्धी कविताओं में 'चलते समय' और चिन्ता शीर्षक कवितायें सचमुच हृदय में चिकोरी काट लेती हैं । 'मुकुल' आपकी कविताओं का सुन्दर संग्रह है। आपकी भाषा परिमार्जित और यंत्र-तन्त्र हिन्दी उर्दू मिश्रित हैं।[1]

श्रीमती महादेवी वर्मा नवीन स्त्री कवियों में ध्रुव तारिक समान हैं हिन्दी काव्य में उनके हृदय के साथ ही उनकी ज्योतिर्मयी प्रतिमा से अनेक कवियित्रियों को प्रेरणा और स्फूर्ति मिली न केवल स्त्री कवियों ने बल्कि कई नवयुवक कवियों ने भी उनकी वेदना पूर्ण शैली का अनुकरण किया है। पन्त, प्रसाद, माखनकाल और निराला की भाँति की भांति वर्मा की कविताओं का भी एक खास स्कूल हैं उनकी संस्कृत प्रधान भाषा उनकी शैली, उनकी भाव व्यंजना अपनी चीज हैं उनकी भावुकता अत्यन्त सूक्ष्म और कल्पना प्रधान हैं उनकी कल्पना का आधार वस्तु जगन नहीं अन्तर्जगत हैं जहाँ हृदय के रंग मंच पर एक ऐसा संसार कीड़ा कर रहा हैं[1] जिसे हम नेत्रों से ही देख सकते हैं । इस साधन और संकेत द्वारा उन्होनें हमारी वाह्य दृष्टि को अन्तर्मुखी बनाने का प्रयत्न किया हैं । जब वे कहती हैं :-

---

1. धर्मयुग अक्टूबर, 1950. पृष्ठ 12.
2. नवभारत टाइम्स - 19 जुलाई 1952. पृष्ठ 8.

यह कैसी छवनर निर्मल

कैसा तेरा निष्ठुर व्यापार?

तुम तन में वे दो छिपे मुझे

भटकाता हैं सारा संसार

तब वे बाहरी जगत के विकल मनुष्यों को जीवन का अभीष्ट ढूढने के लिए अनतजर्गत में ही आनेका आमंतंत्रण देती हैं।

कबीर के जिस प्रकार आत्मा कों प्रेयसी और उस लीलामय परमात्मा को प्रियतम मानकर अपनी वाणी की वीणा बजायी थी, उसी प्रकार उसी वीणा का रचा महादेवी की कविताओं के भीतर जाग उठा हैं परन्तु कबीर की वाणी ज्ञान प्रधान थी, भाव प्रधान नही। मीरा ने उसे भाव प्रधान बनाकर मधुर और मनोहर कर दिया था महादेवी जी ने कबीर की निर्गुण उपासना में मीरा की मधुर सगुण उपासना का समोवेश कर उसे अपनी कविताओं में प्रति फलित कर दिया हैं ।

श्रीमती वर्मा की काव्य-वेदना अलौकित होते हुए भी लौकिक भावनाओं में भी जीवन का संचार करती हैं कारण, उनके आराध्य को हम उर्दू भावुकता के अनुसार दोनो रूप में ग्रहण कर लेते हैं।

कलाविद् रामकृष्ण के शब्दों में 'अपने प्रारम्भिक कवि-जीवन में अपने सामाजिक और राष्ट्रीय कवितायें भी लिखी थीं किन्तु आपकी प्रति का वही तक सीमित नही रही । इसके बाद आपकी कवितायें कल्पना प्रधान हो गई।

## अस्पृश्यता

अस्पृश्यता छुआ-छूत का अंग नही है बल्कि वह उसमें पैदा हुई सड़न हैं वहम है, पाप हैं और उसको दूर करना हर एक का कर्त्तव्य हैं जाति प्रथा के अन्तर्गत चार प्रमुख जातिया या वर्ण थे ब्राहमण क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र[1] इन चारों वर्णो के अतिरिक्त एक पंचम वर्ण भी है । जिनके सदस्यों को परम्परागत रूप से अस्पृश्य या अछूत कहा जाता है पर आज उन्हें हरिजन या अनूसूचित जाति कहते हैं।[1]

भारत की कुल जनसंख्या की 14% लोग अनूर्सूचित जातियों के हैं । उत्तर प्रदेश में अनुर्सूचित जातियों के प्रायः 1.50 करोड़ लोग अनूर्सूचित जाति के हैं जा विभिन्न शहरों में निवास करते हैं ।[2]

इन तथा कथित अछूत जातियों को प्रति उच्च जातियों के सदस्यों द्वारा अपनाये गये छुआ-छूत की भावना व भेदपूर्ण व्यवहार को अस्पृश्य कहा जाता हैं । अस्पृश्यता को महात्मा गांधी ने हिन्दुओं की वर्णव्यवस्था पर एक काला धब्बा और सबसे बड़ा कलंक कहा हैं ।

---

1. पायनियर - 19 सितम्बर, 1949, पृश्ठ 3
2. आज - 20 अगस्त 1950, पृष्ठ 6.

अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अंग ही नही बल्कि उसमें छुआछूत एक महान दोष हैं अन्धविश्वास और पाप है। अस्पृश्यता रूपी महाराक्षस ने हिन्दू धर्म समाज के नष्ट-भ्रष्ट करने में अपने जबरदस्त हाथ रखा था। सैकड़ों वर्षो से अमानवीय व्यवहार व संस्कार वान वर्णो के संसर्ग से वंचित रहने के कारण अस्पृश्यों की स्थिति अत्यन्त करूणाजनक हो गई थीं। उनमें इतनी सामर्थ्य नही रह गई थी कि वे अपने को अन्य वर्णो की कोटि तक चढ़ा सकें। सवर्णो द्वारा वे इतने पददलित और शोषित किये गये थे कि उनकी आत्मा मृतप्राय हो चुकी थी। समाज में उनकी अतिदयनीय स्थिति थी उन्हें समाज का कोढ़ समझा जाता था यही नहीं उनकी परछाई तक को असंगत सूचक माना जाता था। दक्षिण में तो अस्पृश्य जातियाँ उन सड़कों पर नही चल सकती थी जिन पर ब्राहमण चलते थे। इनकी इतनी दयनीय और खिन्न अवस्था देखकर गांधी जी और भीमराव अम्बेडकर जैसे विचारकों को बहुत दुःख हुआ।[1]

गांधी ने तभी शायद कहा कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का सबसे कहा कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का सबसे बड़ा कलंक है। डा0 भीम राव अम्बेडकर ने तो यहाँ तक कह डाला कि हिन्दूओं का अछूतपन एक अनहोनी घटना हैं।'

---

1. लीडर, 9 सितम्बर 1949, पृष्ठ 5.

संसार के किसी दूसरे हिस्से में मानवता न आज तक कभी इनका अनुभवन हीं किया । किसी दूसरे समाज में इस जैसी कोई चीज है कि नही - प्रारम्भिक समाजमें, प्राचीन समाज में, अथवा वर्तमान समाज में ।

अस्पृश्यता का अर्थ है जो छूने योग्य न हो. भारतीय जाति प्रथा के अन्तर्गत ऐसे व्यक्ति जो चार वर्णो के अन्तर्गत नही आते और निम्न तथा घृणित व्यवसाय करते हैं, 'अन्त्यज' कहा जाता हैं । इनको करना पाप माना जाता हैं ये लोग गाँव या शहर के बाहर रहते हैं शेष हिन्दू समाज उनसे किसी प्रकार का सामाजिक सम्पर्क नहीं रखता । इन अस्पृश्य या अछूत कहे जाने वाले लोगों के प्रति सामाजिक दृष्टिकोणं और व्यवहार को ही एक प्रकार से अस्पृश्यता कहा जाता हैं[1]

अस्पृश्यता मनुष्य को अपवित्र समझ कर उनके पृथक रहने की भावना है जिसके कारणअपवित्र समझे जाने वाले लोगों को विभिन्न धार्मिक आर्थिक व सामाजिक सुविधाओं से वंचित कर दिया जाता हैं : अस्पृश्यता किसी एक कारण से उत्पन्न धारणा नहीं अपितु विभिन्न कारकों के सम्मिलित प्रभाव का फल हैं यह कथन सर्वथा उचित हैं कि अस्पृश्यता की उत्पत्ति प्रजातीय, व्यवसायिक, धार्मिक तथा सामजिक कारकों का संयुक्त परिणाम हैं।[2]

---

1. आज - 10 अगस्त, 1951, पृष्ठ 4.
2. लीडर - 20 सितम्बर 1952, पृष्ठ 5.

इस सामाजिक बुराई को दूर करने के लिए विभिन्न समाज सुधारकों ने प्रयास किये तथा सरकार ने भी प्रयत्न किये ।

गैर सरकारी प्रयत्न या सुधार आन्दोलन जाति व्यवस्था के विकृत स्वरूप के कारण जातियों की स्थिति का पतन उत्तर वैदिक काल में ही होने लगा था और अस्पृश्यता की धारणा विकसित होले लगी थी। अतः उसी समय से विभिन्न धार्मिक तथा सामाजिक नेताओं ने इस अभिशाप से हिन्दू जाति को मुक्त करने के प्रयत्न आरम्भ कर दिये थे । विभिन्न समाज सुधारकों के साथ साथ विकसित राजनैतिक चेतना ने भी विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया राजनैतिक दलों, जिनमें कांग्रेस प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।[1]

वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिक प्रगति तथा परिवहन के विकास इत्यादि के कारण स्वयं अस्पृश्यता ने भी अपनी दीन स्थिति के प्रति लगन जागृत हुई और उनमें से कुछ योगय हरिजन नेताओं ने उसकी समाजिक स्थिति को ऊँचा उठाने के प्रयत्न किये । कहने का तात्पर्य यह है कि जनता की ओर से गैर-सरकारी प्रयत्न विशेष स्थान रखते हैं।

---

1. आज - 15 अक्टूबर 1952, पृष्ठ 4.

## धार्मिक संस्थाओं का प्रयत्न

अस्पृश्यता निवारण का प्रथम चरण धार्मिक संस्थाओं के प्रयत्नों से प्रारम्भ होता हैं। इसका प्रमुख आधार यह रहा कि धर्म और अस्पृश्यता परस्पर समबन्धित नहीं हैं ईश्वर के समक्ष सभी जातियाँ समान है।[1]

इस सम्बन्धमें जो कुछ है वह ईश्वरीय हैं अतः कोई भी व्यक्ति अस्पृश्य नहीं। अस्पृश्यता कृत्रिम हैं । स्थायी शंकराचार्य, रामानुज, कबीर, चैतन्य, नानक, रामकृष्ण परमहंस, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द आदि महापुरूषों के प्रयत्न इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण थे।

## सामाजिक संस्थाओं के प्रयत्न

हरिजन सेवक संघ तथा ईश्वर शरण आश्रम इलाहाबाद आदि सामाजिक संस्थाओं ने भी अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन में उल्लेखनीय योगदान किया हैं । इन संस्थाओं को सरकारी अनुदान मिलता हैं हरिजन सेवक संघ ने अस्पृश्य जातियों की आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक निर्योग्यतायें समाप्त करने की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयत्न किये हैं। शिक्षा आदि पर भी इन संस्थाओं ने बहुत ध्यान दिया हैं ।[2]

---

1. दैनिक जागरण - 10 अगस्त, 1953, पृष्ठ 5.
2. पायनियर - 10 जुलाई, 1952, पृष्ठ 3.

### राजनैतिक संस्थाओं का प्रयत्न

भारतकी राजनैतिक स्वतंत्रता के लिये प्रयत्नशील संस्थाओं ने भी अस्पृश्यता विरोधी वातावरण तैयार करने में सहयोग दिया। इस द्रष्टि से अखिल भारतीय कांग्रेस के प्रयत्न सराहनीय हैं [1] जबकि गांधी जी ने भी अस्पृश्यता विरोधी वातावरण तैयार करने में पर्याप्त सहयोग किया। इस द्रष्टि से अखिल भारतीय कांग्रेस के प्रयत्न सराहनीय हैं जब गांधी जी ने राजनीतिक आन्दोलन की बागडोर सम्भाली तब अछूतों का कल्याण कांग्रेस का अन्तिम लक्ष्य बन गया। 1932 में में मदन मोहन मालवीय की अध्यक्षता में सवर्ण हिन्दुओं की एक सभा हुई जिसमें हरिजन सेवक संघ की स्थापना हुई गांधी जी का साबरमती आश्रम अस्पृश्यता निवारण का केन्द्र बन गया।[1]

### हरिजन संस्थाओं का प्रयत्न

सामाजिक राजनैतिक चेतना के फलस्वरूप हरिजनों की संस्थायें अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन में सक्रिय हुई। अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ इस प्रकार का प्रसिद्ध संगठन है जिसके संरक्षक डा0 अम्बेडकर थे। सरकार इस संस्था को अनुदान नही देती। हरिजनों की दूसरी प्रमुख संस्था दलित वर्ग संघ हैं जो कांग्रेस से सम्बन्धित हैं अतः इसे सरकार से अनुदान मिलता हैं। हरिजनों में शिक्षा प्रसार करने उनके लिये, कुएँ, होटल, धर्मशाला, मन्दिरआदि खुलवाने में दलित वर्ग ने बहुत कार्य किया हैं।

---

1. नवभारत टाइम्स - 20अगस्त, 1955, पृष्ठ 6.

अस्पृश्यता विरोधी जो कार्य हुआ वह दो विभागों में बाँटा जा सकता हैं।

1. स्वतंत्रता के पूर्व

2. स्वतंत्रता के बाद

स्वतंत्रता के बाद हमारे समाज सुधारकों ने जो आवाज उठायी उसके कारण सरकार ने अस्पृश्यता निवारण को समाज का एक अंग बताया और इसे राष्ट्रीय योजना का एक अंग बनाया । अस्पृश्यता के विरूद्ध कानून बनाये गये और अस्पृश्यता निवारण कार्यो को सरकारी सहायता प्रदान की गई । संवैधानिक प्रयत्नों में विभिन्न कानूनों का निर्माण महत्वपूर्ण हैं जिसके अनुसार जाति के आधार पर सार्वजनकि वस्तुओं और स्थानों के प्रयोग और प्रवेश आदि पर किसी प्रकार के भेदभाव को दंडनीय अपराध घोषित कर दिया गया हैं। इस विषय में संविधान के अनुच्छेद, 15, 16, 17,ए 29, 38, 46 330, 332, 334, 164, में महत्वपूर्ण नियम बनाये गये हैं। अस्पृश्यता अपराध अधिनियम, 1955 इस सम्बन्ध में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।[1] अस्पृश्यता अधिनियम 1955 की धारा 3 (अ) से स्पष्ट होता है कि प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी सार्वजनिक पूजा स्थान में प्रवेश करने की अनुमति होगी । प्रत्येक व्यक्ति किसी प्रकार की पूजा, प्रार्थना, या दूसरे धार्मिक संस्कार करने में स्वतंत्र होगा ।

धारा 4 के अनुसार किसी दुकान, जलपान गृह, होटलों या सार्वजनकि मनोरंजन के स्थान में प्रवेश करने की अनुमति होगी । धर्मशालाओं इत्यादि को व्यवहार में करने

---

1. आज, 10 नवम्बर, 1961, पृष्ठ 6.

की स्वतंत्रता होगी। साधारण जनता के लिए बनाई गई धमार्थ संस्थाओं के लाभ और सेवाओं को उपयोग करनेका पूर्ण अधिकार होगा ।[1]

अस्पृश्यता बरतने के अपराध में जुर्माना और कैद दोनों तरह की सजा की व्यवस्था की गई । किसी भी आधार पर अस्पृश्यता का प्रचार करना या उसे न्यायोचित ठहराना भी पाप होगा। किसी को अस्पृश्यता बरतने के लिए मजबूर करना भी दंडनीय अपराध होगा।[2]

अस्पृश्यता को प्रभावशाली ढंग से रोकने के लिये कानूनों में राज्य सरकार और केन्द्र सरकार को कुछ विरोध दायित्व दिये गयें है । राज्य सरकारें अस्पृश्यता से प्रभावित लोगों को पर्याप्त कानूनी सहायता उपलब्ध कराने की व्यवस्था करेंगी।

कानून के उल्लंघन के मामलों में अपराधी को दंड दिलाने की कार्यवाही क लिये विशेष अधिकारी नियुक्त किये जायेगें । कानून के अन्तर्गत अपराधों की सुनवाई के लिये विशेष न्यायालयों का गठन किया जायेगा।

---

1. दैनिक जागरण - 11, अक्टूबर 1960, पृष्ठ 5.
2. पत्रिका धर्मयुग सितम्बर, 1961, पृष्ठ 11.

केन्द्र सरकार कानून के प्रावधानों के अन्तर्गत की गई कार्यवाहियों का विवरण प्रतिवर्ष संसद के दोनों सदन में पेश करेगी।

अस्पृश्यता को दूर करनेके लिये केवल कानून पर्याप्त नहीं है अस्पृश्यता की समस्या सुलझाने में सामाजिक कानून सहायक होते हैं। परन्तु वे पूर्ण रूप से अस्पृश्यता की समस्या को सुलझा नहीं सकते हैं । दूसरे शब्दों में अस्पृश्यता की बुराई केवल कानून के द्वारा ही दूर नहीं की जा सकती । इसका कारण भी स्पष्ट है[1]

अस्पृश्यता एक सामाजिक समस्या हैं और इसकी जड़े पिछली शताब्दियों में बहुत गहरी बैठ गई हैं । भारतवर्ष में धर्म का महत्व बहुत अधिक हैं। और यहाँ प्रथा और परम्परायें लोगों पर राज्य करती हैं । पवित्रता की धारणा भारतीय जन जीवन को नियन्त्रित करती हैं और यह सदियों से होता रहा है । इसका परिणाम यह है हुआ कि भारत में देश की कुल जनसंख्या की 80 प्रतिशत् जनता आज भी गाँवों में निवास करती हैं। ये अधिकांश रूप में नाना प्रकार के अन्धविश्वासों से घिरे हुये हैं । अतः उनके लिये धार्मिक व सामाजिक नियमों की अपेक्षा कानून को तोड़ना सरल हैं।[2]

---

1. पत्रिका इण्डिया टुडे - अगस्त 1959, पृष्ठ 15.
2. पत्रिका धर्म युग - जुलाई 1958, पृष्ठ 10.

अस्पृश्यता को धर्म, पवित्रता आदि का आवधारणा दे दिया गया है । इसलिये इसे एकाएक पूर्णतया त्याग देना लोगों के लिए सम्भव नही हो पा रहा है । सामाजिक कानून अस्पृश्यता की समस्या को सुलझानेमें सहायक होते हैं । परन्तु पूर्णतः इस समस्या को पूर्ण सुलझा नही सकते हैं।[1]

ग्रामीण क्षेत्रों में इसके लिये विशेषकर स्वस्थ जनमत की आवश्यकता हैं ऐसा जनमत तभी जाग्रत हो सकता है जबकि धीरे धीरे प्रचार के द्वारा धर्म निरपेक्ष उपदेशों के द्वारा तथा पवित्रता की सही व्यवस्था के अधिकाधिक प्रचार के द्वारा समाज के लोगों को और उनके हृदय व मस्तिष्क को इस प्रकार तैयार किया जाय कि वे अस्पृश्यता को वास्तव में बुरा समझें तभी अस्पृश्यता को सलझाना सम्भव होगा[2]

कानून बनाकर हरिजनों को कुछ सामाजिक अधिकार दिये जा सकते हैं, नौकरियों में उनके लिये स्थान सुरक्षित किया जाता सकता हैं पढ़े लिखे लोगों को अस्पृश्यता की बुराइयोंको समझाया जा सकता हैं । परन्तु भारत की अधिकांश जनसंख्या ग्रामवासियों को सही रास्तें पर लाया नहीं जा सकता । इसके लिये तो काफी समय तक सतत् प्रयत्नों की आवश्यकता हैं ।

---

1. दैनिक जागरण - 20 जनवरी, 1956, पृष्ठ 5.
2. नवभारत टाइम्स, 12, जुलाई 1957, पृष्ठ4.

वर्तमान भारत में छुआ-छूत बरतना कानूनी तौर पर अपराध है और उस कानून को दृढ़ता से लागू करने का प्रयत्न किया जा रहा है । साथ ही इस अस्पृश्यता के विरुद्ध ठोस जनमत तैयार करने के लिए प्रचार कार्यो पर हर साल लाखों रुपयें व्यय होते है। इस देश में कानून को कुछ भी सफलता नही मिली है । यह कहना अनिश्चित होगा परन्तु यह कहना भी अनुचित न होगा कि ग्रामीण क्षेत्रों में आशानुरूप सफलता प्राप्त नही हो सकी।[1]

कानून बनाकर वैधानिक रूप से हरिजनो की निर्योग्यताओं को समाप्त किया जा सकता हैं अन्य नागरिकों की भांति उन्हें समाज में अधिकार दिये जा सकते हैं। छुआछूत बरतना कानूनी आराध पर दंडनीय हो सकता है फिर भी हजारो वर्षो से कोढ़ियों प्रथाओं, संस्थागत नियमों और धर्म के कठोर व निर्दयी शासकों द्वारा शासित हिन्दुओं के मनोभाव, विचार व दृष्टिकोण को दो चार या दस वर्ष में केवल कानून पास करके नही बदला जा सकता ।[2]

श्रीमती सरोजनी नायडू, सुभद्रा कुमारी चौहान, श्रीमती इन्दिरा गांधी, श्रीमती कमला नेहरू इत्यादि महिला समाज सुधारकों ने अस्पृश्यता उन्मूलन के लिये कुछ सुझाव व्यक्त किये हैं । जो निम्न हैं ।

---

1. पायनियर - 17 अगस्त 1962, पृष्ठ 5.
2. दैनिक जागरण - 18 जुलाई 1962.

**1. जाति प्रथा के स्वरूप में परिवर्तन**

अस्पृश्यता वास्तव में जाति प्रथा का अभिशाप है परन्तु जाति प्रथा को समाप्त करना कोई सरल कार्य नही है । जाति प्रथा के संरचनात्मक और संस्थागत स्वरूपों में जो दोष पाये गये हैं उन्हें कानून द्वारा दूर करने का प्रयत्न करना होगा अस्पृश्यता की धारणा उन दोषों मे सर्वप्रथम हैं।

**2. गन्दे पेशों को समाप्त करना**

अछूतों के पेशों को गन्दगी के मशीनों की सहायता से दूर करने का प्रयत्न होना चाहिए। भंगियों और चमारों के कार्य विशेष रूप से गन्दे हैं । इसी प्रकार टोकरियों में सिर पर मैला ढोने की कुप्रथा समाज का कलंक है । इसलिए इस प्रकार का उन्मूलन हमारा लक्ष्य होना चाहिए। मेहतरों को बन्द गाड़ियों, बन्द बल्टियों तथा मैलों को साफ करने के लिये उचित मशीन आदि भी दी जानी चाहिए।

**3. नये आधार पर ग्रामीण समुदाय के सामाजिक आदर्शो का निर्माण**

अछूतों की दशा गॉव में अधिक दयनीय है । सामुदायिक योजना प्रौढ़ और सामाजिक शिक्षा के विस्तार द्वारा ग्रामीण जनता के विचारों और अन्धविश्वासों को बदलना सबसे अधिक आवश्यक है । गॉव में रहने वाली अधिकतर अछूत जातियॉं भूमिहीन श्रमिक है और उनका उच्च जाति के द्वारा अधिक शोषण होता है । अतः आवश्यकता यह है कि हरिजनों के प्रति इन मनोभावों को बदला जाय। इसके लिये प्रचार आदि के द्वारा निरन्तर प्रयास की आवश्यकता हैं।

## 4. शारीरिक श्रम के प्रति श्रद्धा

शारीरिक श्रम को ऊँची जातियाँ घृणा की दृष्टि से देखती हैं । जिससे अस्पृश्यता या ऊँच नीच की भावना और कटु होती हैं। इनको जनमत और प्रचार के द्वारा दूर करना चाहिए।

## उचित निवास स्थान

हरिजनों की बस्तियों वास्तव में मनुष्यों के रहने के योग्य नहीं हुआ करती हैं । इसका बुरा प्रभाव उनके स्वास्थ्य स्तर और नैतिक उन्नति पर पड़ता हैं। इस कारण निवास स्थान की उचित व्यवस्था अनिवार्य है । इस सम्बन्ध में सरकारी प्राप्त सबसे अधिक होने चाहिये । परन्तु इस कार्य में महानगर पालिकाओं आदि से भरपूर प्रयत्नों की आवश्यकता हैं।

## शिक्षा सामान्य और औद्योगिक

किसी भी सुधार का एक प्रमुख आधार शिक्षा होती है विशेषकर हरिजनों से सम्बन्धित प्रत्येक आर्थिक तथा सामाजिक तब ही हो सकता है जबइनको अज्ञानता के अन्धकार से भुक्त कर दिया जाय । इनके अन्धविश्वासों को दूर करने के लिये, इनको अच्छी नौकरियों में नियुक्त करने के लिये साथ ही इनकी औद्योगिक कुशलता को बढ़ाने के लिये इनको सामान्य और औद्योगिक शिक्षा दोनो की ही व्यवस्था होनी चाहिए।

7. उचित वेतन सम्बन्धी कानून

हरिजनों की आर्थिक दशा सुधारने के लिये यह भी आवश्यक है कि इनकी अपनी सेवाओं के लिये उचित वेतन मिले । इस दिशा में भी सरकार प्रयत्न सबसे प्रमुख हैं महानगर पालिकाओं तथा नगर पालिकाओं के अधीन जो महतर आदि कार्य करते हैं उनके वेतन में भी आवश्यक सुधार की अत्यधिक आवश्यकता है । यह कार्य उन्हीं नगर पालिकाओं द्वारा लिया जाना चाहिए।

8.स्वस्थ मनोरंजन

हरिजनों को अन्धविश्वासों से मुक्त कराने के लिये इनकी नशाखोरी की आदत को मिलने के लिये और उनके नैतिक स्तर को ऊँचा करने के लिये यह आवश्यक है कि इनके लिये स्वस्थ मनोरंजन की समुचित व्यवस्था हो । ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक खेलकूद भजन, मंडली, कीर्तन, सभा, प्रदर्शन, मेला आदि के द्वारा मनोरंजन आदि की व्यवस्था की जा सकती है । यह काम सामुदायिक विकास योजना के अन्तर्गत और भी विस्तृत रूप से लागू होना चाहिए। साथ ही साथ शिक्षाप्रद सिनेमा आदि के माध्यम से इनका वैज्ञानिक तरीके से उपलब्ध मनोरंजन के साधनों के सदुप्रयोग के सम्बन्ध में शिक्षित करने का प्रयत्न करना होगा ।

9.सामाजिक सुरक्षा

हरिजनों के जीवन में आर्थिक और स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकतायें सबसे

अधिक हैं। इस कारण इनके लये सामाजिक सुरक्षा की विस्तृत आयोजना होना चाहिए। इस सम्बन्ध में सरकारी प्रयत्न सबसे अधिक होना चाहिये क्योंकि सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी योजनाओं को बनाने तथा उन्हें लागू करने के प्रर्याप्त साधन सरकार को ही अधिक उपलब्ध हैं ।

इस सम्बन्ध में दिल्ली में जातिवाद और अस्पृश्यता के निवारण के लिये जो सेमिनार हुआ था उसका सिफारिशें भी उल्लेखनीय हैं ।

1. हरिजन देश में सबसे अधिक निर्धन है। इसलिए सरकारी योजनाओं ,ारा उनकी आर्थिक दशा को सुधारने का सबसे पहले प्रयत्न किया जाय । घरेलू उद्योग धन्धों के विकास के साथ साथ इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि कहीं जाति प्रथा का वंशानुगत पेशों वाला पहलू न बना रहे ।

2. जहाँ कहीं आवश्यक हो वहाँ सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिये सामाजिक कानून बनाने चाहिए। पर शिक्षा और प्रचार का कार्यक्रम कानून से पहले चलाया जाय या उनके साथ साथ चलाया जाय।

3. सरकार की ओर से या किसी सार्वजनकि संस्था की ओर से जहाँ कही भी मकान बनानेकी व्यवस्था हो वहाँ ऊँची जातियों के साथ हरिजनों को मकान मिलना चाहिए।

4. शहरों में जातियों के आधार पर कोई भी छात्रावास नहीं रहना चाहिए और हजिरन विद्यार्थियों को सामान्य छात्रावास में अन्य जातियों के साथ सुविधा मिलनी चाहिए।

5. प्राइमरी स्कूलों में सब जातियों के बच्चों को कुद समय तक नियमित रूप से कैम्प में एक साथ रखकर तथा अन्य प्रयत्नों से जातीय भेदभाव को जड़ से मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए।[1]

समाज एवं हरिजन कल्याण निदेशालय द्वारा प्रसारित एक विज्ञापन में प्रायः यह कहा जाता है कि प्रत्येक नागरिक को यह जानना चाहिए कि अस्पृश्यता क्या है? 'अस्पृश्यता मानव का अपमान एवं सामूहिक मूर्खता का प्रतीक है। अस्पृश्यता दण्डनीय है, अस्पृश्यता समाज के शरीर में विष है और राष्ट्रशक्ति की श्रृखंला में एक कमजोर कड़ी हैं तथा अस्पृश्यता समाज कल्याण के प्रयत्नों का उपहास एवं राजद्रोह हैं।'[2]

गांधी जी बार बार कहा करते थे कि छुआ-छूत धर्म का अंग नहीं है, बल्कि वह उसके पैदा हुई सड़न है, वहम हैं, पाप है और उनको दूर करना हर एक का कर्त्तव्य हैं।

---

1. डा0 पी.एम.श्रीवास्तव, पी.सी.एस. समाजशास्त्र पृष्ठ 130.
2. डा0 पी.एम. श्रीवास्तव, पी.सी.समाजशास्त्र, पृष्ठ 131.

राष्ट्रपिता गांधी से प्राप्त प्रेरणा व आधार के अनुसार ही सरकार हर प्रकार से सचेष्ट है कि शैक्षिक, आर्थिक एवं सामजिक दृष्टि से हरिजनों की दशा सुधरे, उनमें अपने प्रति सम्मान और स्वाभिमान की भावना जागे और समाज में उनका आदर बढ़े। छुआ-छूत बरतना कानूनी तौर पर अपराध है और इसे दूर किया जा रहा है।

भारत के गांवों में भी तथाकथित अछूतों को सामजिक संरचना में सबसे भिन्न स्थान देने वाले जातीय संगठन की नींव हिल उठी है और हो सकता है कि एकसा भी दिन आये जबकि अछूतपन की भावना ही मिट जाये।

# अध्याय - 6

## जाति प्रथा और स्वतंत्रा प्राप्ति के पश्चात सम्बन्धित जाति विरोधी आन्दोलन

# जाति प्रथा और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सम्बन्धित जाति विरोधी आन्दोलन

## जाति प्रथा

जाति प्रथा ने हिन्दुओं को जन्म पर आधारित परस्पर पृथक पदानुक्रमित श्रेणियों में बांट रखा था। इसलिए समाज सुधार आन्दोलन ने उसके उन्मूलन को अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया। जाति प्रथा "हिन्दू धर्म का लौह ढाँचा" थी। वेदों में भी इसके अस्तित्व की चर्चा है। इस तरह यह प्रथा वेदों से भी पुरानी है। शुरू में हिन्दू समाज में केवल तीन या चार वर्ण थे। लेकिन बाद में प्रजातिय सम्मिश्रण, भौगोलिक विस्तार, हस्त शिल्प के विकास और तज्जन्य नये व्यवसाय के उद्भव आदि कारणों से प्रारम्भिक वर्ण विविध जातियों एवं उप जातियों में विभक्त हो गए।

अतीत में हिन्दू धर्म सभी जातियों के सांस्कृतिक एकता का आधार था, जाति प्रथा ने उन्हें विभिन्न दलों और उपदलों में अलग अलग बांट दिया। जाति प्रथा सत्तावादी और अजनतान्त्रिक थी। इस पदानुक्रमिक श्रेणी श्रृंखला में प्रत्येक जाति अपने नीचे की जाति से श्रेष्ठ और ऊपर की जाति से निकृष्ट थी। इस श्रृंखला में जाति विशेष की स्थिति से ही उस जाति में पैदा हुए व्यक्ति का सामाजिक स्थान निर्धारित होता था। व्यक्ति विशेष के जन्म से ही उसकी अपरिर्वन शील स्थिति पूर्व निर्धारित हो जाती थी।[1]

---

1. ए.आर.देसाई-भारतीय राष्ट्र वाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृष्ठ.193.

इसी तरह जिस जाति में आदमी पैदा होता था उसी से यह पूर्व निर्धारित हो जाता था कि उस आदमी का पेशा क्या होगा । अलग से अपना पेशा चुनने की उसे आजादी नहीं थी । जन्म ही यह फैसला करता था कि आदमी कौन सा पेशा चुनेगा किसी जाति विशेष का आदमी अन्य जाति में शादी नहीं कर सकता था । इस तरह जीवन साथी चुनने का क्षेत्र भी अत्यनत सीमित था ।

जाति ने व्यक्तिगत क्षमता नहीं वरन् जन्म पर आधारित अभिजात्य की सृष्टि की व्यक्ति की अपनी विशिष्ट प्रतिभा और क्षमता का मुक्त उपयोग इसके कारण असम्भव हो रहा था साथ ही उसकी उपक्रमण शक्ति, आत्मविश्वास और उद्यम शीलता का हनन भी हो रहा था यह स्थिति राष्ट्र भावना और प्रजातांत्रिक राज्य व्यवस्था के विकास को अवरुद्ध करती है । छुआछूत की समस्या भी जाति का ही परिणाम है।[1]

जाति व्यवस्था पदानुक्रमित श्रेणी श्रृखला आवद्ध थी और इसीलिए सामाजिक और न्यायिक विषमता पर आधारित थी। सामाजिक पिरामिड में शीर्षस्थ ब्राहमण जाति के ही लोग धार्मिक और सामाजिक क्रिया कलाप में पुरोहित का कार्य कर सकते थे। इस पिरामिड के निम्नतम धरातल पर शूद्रों, अछूतों की जगह नियत थी । जिन्हें धर्म द्वारा पुनीत घोषित और राज्य की अबपीड़क सत्ता द्वारा समर्थित हिन्दू समाज ने अन्य जातियों की

---

1. बख, एम.एन. राइज एण्ड ग्रोथ आफ इंडियन लिबरलिज्म, पृष्ठ 23.

सेवा करने और हलखोर चमार आदि पेशों जैसा निम्न कार्य करने के लिए बाध्य कर रखा था।

जाति व्यवस्था की अनन्यता इस बात में नीहित नहीं थी कि वह कर्तवयों की विभिन्नता पर आधारित थी, वरन् इस बात में कि इसने जन्म को सामाजिक विभाजन का आधार बनाया । इसका अर्थ इतना ही नहीं है कि यह व्यवस्था समानता के द्धिान्त के विरूद्ध थी, वरन् यह भी है कि इसमें असमानता पूर्णतः वंशानुगत के आधार पर संगठित रूप में मिलती है । किसी भी समाज व्यवस्था में कार्यो की विभिननता तो रहेगी ही, इस वैविध्य की अवश्यभांविता की पहचान जाति व्यवस्था की विशिष्टता नही है, इस कर्मवैविध्य का व्यवसथापित और निर्यान्त्रित करने का इसका तरीका विशिष्ट हैं।[1]

## जाति बनाम वर्ग

जातियों जैसे मानव समुदायों का अपना स्वयं का पूर्ण विकसित जीवन होता है । स्वैच्छिक संस्थाओं और वर्गो से विपरीत जातियों की सदस्यता चयन पर नहीं वरन् जन्म पर निर्भर है । आधुनिक यूरोप के सामाजिक वर्गो में व्यक्ति की पदवीं प्रतिष्ठा सम्पत्ति पर निर्भर है, इसके विपरीत भारत में आदमी की पदवी प्रतिष्ठा उस जाति के परम्परागत महत्व पर निर्भर थी जिसमें भाग्यवश उसका जन्म हुआ था। जाति और वर्ग के विभेद पर जहाँ

---

1. शेलवंकर, प्राब्लम ऑफ इण्डिया, (1940), पृष्ठ 20.

तक इसका अर्थ स्पष्टतः पृथक विभाजनों से है, मैकाइवर ने कहा है - प्राच्य सभ्यताओं में जन्म ही वर्ग प्रतिष्ठा का निर्णायक होता था, लेकिन आज की पाश्चात्य सभ्यताओं में सम्पत्ति का उतना ही या और भी अधिक महत्वपूर्ण वर्ग निर्णायक है, और सम्पत्ति की जन्म की अपेक्षा कम दुर्नभ्य निर्णायक है। यह अधिक ठोस है, इसलिए उसके दावों को आसानी से चुनौती दी जा सकती है । चूंकि सम्पत्ति परिणामतः कम या अधिक हो सकती है, इसलिए यह जाति या दलगत विभिन्नताओं का जनक नहीं हो सकती हस्तान्तरणीय प्राप्य और सक्राम्य होने के कारण यह वैसे चिरस्थायी विभेदों की सृष्टि नहीं कर पाती जैसे कि सृष्टि जन्म कर सकता है।[1]

वर्ग के सदस्यों के आचार-विचार के संचालन, नियमन के लिए समस्त समाज के कानूनों के अतिरिक्त अपनी कोई विशिष्ट स्थाई या अस्थायी पंचायत नहीं होती ।[2]

प्रत्येक जाति एक अलग सामाजिक, सांस्कृतिक समुदाय के रूप में विकसित हुई। जाति व्यवस्था को धर्म का भी समर्थन प्राप्त था । जाति की शुरूआत ही भगवान ब्रह्मा से मानी जाती थी।[3]

शादी व्याह, पेशे का चुनाव, पारस्परिक खानपान और जीवन के अन्यान्य बहुत सारे परम व्यक्तिगत प्रश्नों पर जाति का नियन्त्रण था। जाति की मान्यताओं को धर्म और

---

1. धुर्ये, कास्ट एन्ड रेस इन इण्डिया पृष्ठ 2.
2. वही......................पृष्ठ 31
3. रिजली, दी पीपल ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 298.

हिन्दू राज्य की अवपीड़क शक्ति का समर्थन प्राप्त था और वह स्वयं भी अपराधी को दण्ड दे सकती थी । इस तरह इस व्यवस्था में व्यक्तिगत आजादी थी ही नहीं। व्यक्ति अपने पेशे का चुनाव नही कर सकता था, अपनी इच्छा व मर्जी से शादी नही कर सकता था और न जिस किसी के साथ भोजन कर सकता था ।

पदानुक्रमित श्रेणी श्रृंखला आबद्ध होने के कारण जाति व्यवस्था ने जातियों के बीच परस्पर असमानता की सृष्टि की नीची और ऊँची जातियों के आधार भी अलग होते थे। नीची जातियों को शहर या गाँव में अलग जमीन पर बसाया जाता था। अछूत और अपवित्र जातियों के लोगों को सर्वसाधारण के कुओं और तालाबों से पानी भी नहीं मिल सकता था। वे मन्दिरों में भी प्रवेश नहीं पा सकते थे। जाति प्रथा के कारण सामाजिक प्रपीड़न इतना अमानवीय हो गया था कि निम्नतम स्तर के कुछ लोगों को अछूत और निकृष्ट मान लिया गया। उन पर दृष्टि पात होने भर से लोग अपवित्र हो जाते थे और जो अछूत जाने - अनजाने किसी ब्राहमण को दिखाई पड़ जाता था उसे बड़ी कठोर सजा मिलती थी।[1]

### जाति व्यवस्था के प्रमुख लक्षण

पदानुक्रमित श्रेणी श्रृंखला, सामाजिक असमानता, सजातीय विवाह, भोजन पान पर प्रतिबंध पेशे के चुनाव में स्वतन्त्रता का अभाव ये ही जाति व्यवस्था के प्रमुख लक्षण थे।

---

1. ओ. मेली माडर्न इण्डिया एण्ड द वेस्ट पृष्ठ संख्या - 374-75.

प्रत्येक भाषा क्षेत्र में लगभग दो सौ समुदाय थे जिनहें जाति के नाम से जाना जाता था।[1] जिनके अपने अलग अलग नाम थे। उनमें किसी एक में भी जनम होने पर व्यक्ति विशेष की सामाजिक पदवी प्रतिष्ठा नियत हो जाती थी। ये जातियाँ लगभग 2000 उपजातियों में विभक्त थीं । उपजातियाँ शादी-व्याह और सार्थक सामाजिक जीवन और विशिष्ट सांस्कृतिक परम्परा की स्थापना आदि का सीमा निर्धारण किया करती थी। कुछ अपवाद हो सकते हैं, लेकिन इन बड़े बड़े दलों के पुरोधा प्रायः एक ही होते थे जो सारी दलों को बाँधे रहते थे.. जो विभिन्न दल इस व्यवस्था के अंग थे, उन्होंने इसके मूल बिन्दुओं को पूर्णतः स्वीकार कर लिया था और गांवों में ये दल परस्पर एक दूसरे पर आश्रित थे, इसलिए ये विशिष्ट एकाविक दल समस्त व्यवस्था को विभिन्न स्वतंत्र दलों में विखण्डित नही कर सके, वरन् उन्होंने नागरिक जीवन में एक प्रकार तालमेल बनाए रखा । यों निश्चय ही यह सामंजस्य वैसे तत्वों का सामंजस्य नही था जिनका मूल्य समान हो । यह ऐसी इकाइयों का सामंजस्य था जो एक दूसरे पर आश्रित थी।[2]

मूलतः भारती जनता के आर्थिक आस्तित्व के अविकसित होने के कारण जाति प्रथा सदियों तक फूलती फलती रही। जिस प्राक् पूँजीवादी अर्थतंत्र पर यह आश्रित थी, गाँव का स्वशासन, विनिमय सम्बन्धों का अपूर्ण विकास और यातायात के अक्षम और स्वल्प साधन उसके आधार थे।[3]

---

1. धुर्ये कास्ट एण्ड रस इन इण्डिया, पृष्ठ संख्या-33.
2. धुर्ये, कास्ट एन्डरेस इन इण्डिया पृष्ठ - 27.
3. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि - पृष्ठ संख्या 104.

**जाति प्रथा के ह्रास के कारण**

अंग्रेजों की भारत विजय के फलस्वरूप जिन आर्थिक शक्तियों का जन्म हुआ उन्होंने जाति का आर्थिक आधार ही खत्म कर दिया । गाँव के स्वशासन का हनन, भूमिगत वैयक्तिक सम्पत्ति का सृजन, देश का अनवरत औद्योगीकरण जिसके कारण नये पेशों का जन्म हुआ और आधुनिक शहर बसे, जिन्होंने जातिगत विधिनिषेधों पर कुठाराघात किया, रेलवे और बसों का यन्त्र जाल का विस्तार जिसके कारण भारतीय समाज में पहली बार बड़े पैमाने पर लोग यात्रा करने लगे और इस तरह चाहे अनचाहे एक दूसरे के सम्पर्क में आए, इन प्रमुख कारणों से जातियों का पेशागत आधार और इसके सदस्यों के आचार विचार समाप्त हुए।[1]

**नए सम्पत्ति सम्बन्ध का प्रभाव**

भूमिगत साम्पत्तिक अधिकार और इनमें हेर-फेर करने की स्वतंत्रता, संभावना एवं औद्योगिक, वाणिज्यक, प्रशासनिक डाक्टरी एवं वकालत जैसे पेशों और व्यवसायों की सृष्टि के कारण गाँवों के संयुक्त परिवारों में विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्तियाँ उभर आयीं । परिवार के जिन सदस्यों ने बाहर शहरों में जाकर विविध पेशों को अख्तियार किया उन्होंने सम्पत्ति के विभाजन की मांग करनी शुरू की।[2]

---

1. आज - 19 अगस्त, 1986, पृष्ठ 2
2. धुर्ये कास्ट एण्ड रेस इन इण्डिया, पृष्ठ संख्या 30.

भारतीय कृषि का तकनीकि पिछड़ापन एवं नई भूमिकर व्यवस्था, किसानों की बढ़ती हुई ऋणग्रस्तता और समानुपाती औद्योगिक विकास के अभाव में हो रहे हस्त शिल्प के ह्रास और फलस्वरूप भूमि पर बढ़ती हुई जनसंकुलता इन सब कारणों से किसान बहुत बड़ी तादाद में शहरों में जाने के लिए बाध्य हो रहे थे वहाँ इन्होंने मिलों में मजदूरों और घरेलू नौकरों का कार्य किया । इसके चलते भी जातिगत पेशा का आधार विघटित हुआ।

जाति पंचायतों को जाति संबन्धी नियमों के उल्लंघन के लिये दंड देने का जो अधिकार था उसे ब्रिटिश सरकार ने अपहृत कर लिया । इधर आर्थिक बाध्यता और नये आर्थिक राजनीतिक हालातों में सुलभ नये अवसरों के कारण लोगों ने जाति सम्भत पैतृक पेशों को छोड़ना शुरू कर दिया । पुरोहित या शिक्षक का काम करने के बदले ब्राहमणों ने डाक्टर व्यापारी, मिल मासिक, किरानी या हवाई जहाज का संचालन कार्य शुरू किया। आधुनिक बाध्यता या आकांक्षा के कारण शिक्षित ब्राहमण चर्म उद्योग जैसे कार्य शुरू कर रहे थे, जो आज से पचास वर्ष पहले घृणा की दृष्टि से देखा जाता था।[1]

**आधुनिक शहरों का प्रभाव**

आधुनिक उद्योगों के कारण जिन आधुनिक उद्योगों के कारण जिन आधुनिक

---

1. ओ मेली, माडर्न इण्डिया ऐड दि वेस्ट, पृष्ठ 310.

आधुनिक शहरों का आविर्भाव हुआ उनमें बड़े बड़े होटल, जलपान घर, थियेटर ट्राय, बस आदि भरे पड़े थे । विभिन्न जातियों के लोग खान-पान व शारीरिक सम्पर्क के प्रश्न पर एक दूसरे से जिस पार्थक्य का निर्वाह करने आये थे वह नियमित रूप से समाप्त होने लगा। विभिन्न पेशों या सामाजिक उत्सवों में अन्य जातियाँ और सम्प्रदायों के सदस्यों से भी सम्बन्ध रखने की आवश्यकता से इस प्रक्रिया को बटन मिला, यूनियनों से सम्बन्ध और राजनीतिक अथवा आर्थिक सम्मेलनों से सम्बन्धित सामाजिक मनोरंजनोंके कारण सब जातियों के और बिना जाति के भी लोग एक दूसरें के साथ आये ।

ताज होटलों में ब्राहमणों मिल मालिक और शुद्र मिल मालिक साथ भोजन करने लगा। शहरों में मजदूरों और मध्यम वर्गीय लोगों के साधारण होटलों और जलपान घरों में विभिन्न जातियों और धर्मो के लोगों की भीड़ लगने लगी । ट्रेनों और बसों में लोग दलित जातियों के लोगों और कभी-कभी अछूतों से भी कन्धा सटाकर चलने लगे। आधुनिक सामाजिक अस्तित्व की सुविधाओं ने जाति या सम्प्रदायगत विभाजनों को कोई मान्यता नहीं दी, अलबत्ता के निष्पक्ष रूप से उन सबके लिये घी थी जो उनके लिये पैसा दे सकें ।

फिर भी यह समझना गलत होगा कि जातिगत विभाजन समाप्त हो गये थे। शहरों में भी दकियानूसी जातिपंथियों ने हरचन्द कोशिश की कि जाति द्वारा निर्धारित नियमों का पूरी तरह पालन किया जाय।[1]

---

1. ए.एस. देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 198.

**नये न्यायतंत्र का प्रभाव**

देश में समरूप न्यायतंत्र लागू कर ब्रिटिश सरकार ने प्राकृतंत्र लागू कर ब्रिटिश सरकार ने प्राक्बिटिश भारत में प्रचलित सामजिक और न्यायिक असमानताओं को गहरी चोट पहुचाई । प्राचीन काल में यह जाति की प्रतिष्ठा से निश्चित होता था कि किसी को क्या सजा मिलेगी । हिन्दू राज्य, जाति और गाँव एक ही अपराध के लिये विभिन्न जाति के अपराधियों को विभिन्न सजा दिया करते थे । अब न्याय संगत जाति निरपेक्ष समानता की स्थापना हुई ।

ब्रिटिश सरकार ने जाति की पंचायतों से दंड देने का अधिकार ले लिया । इस तरह जाति के पास वह अस्त्र नहीं रह गया जिसके माध्यम से वह जाति के उदंड, उजंड्ड सदस्यों पर काबू रख सके । जाति अब स्वैच्छिक संगठन भर रह गया और अगर जाति के नियमों के उलंघन के लिए पंचायत ने जुर्माना लगाया या अन्य सजा दी तो इसके लिये उसे कानून की सहमति नहीं प्राप्त थी। इसके चलते जाति की शक्ति काफी कम हो गयी।[1]

कास्ट डिजे बिलिटीज रिमूबल एक्ट आफ 1850 दि स्पेशल मैरिज एक्ट ऑफ 1872 और स्पेशल मैरिज अभेंद भेंट एक्ट ऑफ 1923 ने जातिके भव्य प्रासाद को ध्वस्त करने में मदद दी ।

---

1. ए.आर.देसाई., भारतीय राष्टवाद की सामाजिक पृष्ठ भूमि, पृष्ठ 198.

**नये सामाजिक वर्गो के उदय का प्रभाव**

नई आर्थिक व्यवस्था के कारण आर्थिक क्षेत्र में आबादी के नये संगठन तैयार हो गये । पुरानी कार्यवाही के अनुकूल नही थी। भारतीय जनता अब पूँजीपति मजदूर, किसान, मालिक व्यापारी, बटाईदार, खेत मजदूर , डाक्टर, वकील, टक्नीशियन, जैसे विभिन्न दलों में विभक्त थी, और प्रत्येक दल में विभिन्न जातियाँ और सम्प्रदायों के लोग थे । यद्यपि इन दलों के अपने विशिष्ट भौतिक और राजनीतिक स्वार्थ थे, नये वर्गो के अनुसार बने इन नये समस्त विभाजनों ने पुराने श्रेणीगत विभाजनों को कमजोर किया । इस तरह मिल ओनर्स एसोसियेशन, आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस, आल इंडिया किसान सभा, और लैंड लार्डस यूनियन जैसी नई जमातें बनीं । इन दलों ने अपने विभिन्न स्वार्थो के लिए संघर्ष किये।[1] इन संघर्षो के सिलसिले में इन्होंने नया दृष्टिकोण, नई चेतना, और नई संघर्ष शक्ति जातिगत चेतना का ह्रास हुआ । नया वर्ग व्यवहार प्राप्त हुआ। इस तरह के लगातार जाति व्यवस्था को कमजोर करते गये ।

**वर्ग संघर्षो का प्रभाव**

हड़ताली संघर्षो में, मजदूरी बढ़ाने और काम की हालातों में सुधार और तरक्की के शामिल उद्देश्यों की पूर्ति के लिये, ऊँची जातियोंके मजदूर अछूत मजदूरों से कंधा मिलाकर

---

1. ए.आर. देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 198.

लड़े । इसी तरह ब्राहमण हो या वैश्य और शूद्र, पूंजीपतियों ने भी मजदूरों से अपने स्वार्थ की रक्षा के लिये अपनी एकता कायम की । हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, विभिन्न सम्प्रदायों के एक ही वर्ग के लोग वर्गगत एकता की परिधि में आये । ऐतिहासिक प्रवृत्ति यह थी कि वर्ग सूत्र मजबूत हुये, और जाति सूत्र कमजोर क्योंकि वर्ग विभाजन आधुनिक आर्थिक अस्तित्व, समाज के नये आर्थिक विभाजन और वर्ग के सदस्यों के समरूप भौतिक स्वार्थो पर आधारित था।[1]

राष्ट्रीय धर्म तंत्र भी वर्ग विभाजन का आधार था। प्राक् ब्रिटिश भारत में पेशा ही आधार था । पाक् ब्रिटिश भारत में पेशा ही जातिका आधार था और देहात या शहर का स्थानीय अर्धतंत्र उसका अवलम्बन किसान और कारीगर बहुसंख्यक आत्मनिर्भर स्वशासित शहरों या गाँवों में स्थानीय दलों में विभक्त थे, उनके कोई अखिल भारतीय सम्मिलत भौतिक स्वार्थ नही थे । उनके अपने स्थानीय स्वार्थ थे इसलिए उनकी एकता स्थानीय थी। लेकिन इसके विपरीत परवर्ती काल में, किसान, मजदूर व्यापारी और मिल मालिक आदि विभिन्न नए वर्गो की अपनी अखिल भारतीय एकता बनी ।

पेशागत विभिन्नता केकारण लोगों की आबादी और उनके जीवन स्तर में विभेद आए इससे लोगों के आचरण और व्यवहार, दृष्टिकोण और चिनतन शैली एवं आकाक्षाओं में भी अन्तर आए, और जाति विरोधी भावनाएं बढ़ी। पुरानी विचारधारा जड़ता नैतिक साहस का का अभाव, आदि कारणों से जाति विरोधी भावनायें व्यापक विद्रोह का रूप न हो सकीं।

---

1. ए. आर. देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 198

**आधुनिक शिक्षा का प्रभाव**

जाति के प्रथा श्रद्धा की भावना समाप्त करने में आधुनिक शिक्षा की भूमिका भी कम नहीं है । प्राक् ब्रिटिश भारत में जो कुछ शिक्षा थी वह ब्राहमणों के एकाधिकार द्वारा निदेर्शित थी और वह धर्म से ओत-प्रोत थी । चूँकि जाति व्यवस्था को धर्म का समर्थन प्राप्त था, इसलिए हिन्दू धर्म से ओत-प्रोत वह शिक्षा पद्धति लोगों को जाति व्यवस्था को स्वीकार करने की शिक्षा देती थी और व्यक्तियों में जाति विवेक स्थापित करने में मदद देती थी।[1] लोग यह मानकर चलते थे कि जाति दैविक विधान है । वे यह समझते थ कि जाति के नियमों का उल्लंघन घोर पाप है । प्राक् ब्रिटिश शिक्षा पद्धति का एक काम था व्यक्ति में हिन्दू समाज की जाति व्यवस्था के प्रति श्रद्धा को भावना का संचार करना और उसे जातिगत संस्कारों का उत्साही और इच्छुक अनुयायी बनाना। ब्रिटिश शासन ने शिक्षा पद्धति को धर्म निरपेक्ष बनाया । अब यह सेवकों सहज सुलभ थी। अपनी मीमाओं और विपत्तियों के बावजूद यह शिक्षा पद्धति सारतः उदारवादी थी न्याय के समक्षा व्यक्तियों की समानता राज्य के सभी नागरिकों के समान अधिकार, मन माफिक, पेशा अख्तियार करनेकी आजादी, नई शिक्षा पद्धति ने इन सिद्धान्तों का प्रति पादन किया। यूरोपियन उदारवाद इसका आधार था। प्रतिनिधि संस्थाओं और एशोसियेशन और असेम्बली की स्वतन्त्रता जैसे विचारों का इसने प्रचार किया । ब्रिटिश शासन भारतीय जनता पर विदेशियों का शासन था । इसलिए अप्रजातांत्रिक तो था ही फिर भी इस शासन द्वारा संगठित और चलाई गई शिक्षा पद्धति प्राक्

---

1. पापनियर - दैनिक समाचार पत्र, 1890, 19मार्च, पृष्ठ 5.

ब्रिटिश भारत की शिक्षा प्रद्धति की तुलना में जिसने हिन्दू समाज की जातिगत विविधताओं और विशेषाधिकारों को समर्थन दिया। धर्म निरपेक्ष और मूलतः उदारवादी तो थी ही। भारतीय समाज के शिक्षित वर्ग के एक अंश ने पाश्चात्य देशों के उदारवादी दर्शन और प्रजातान्त्रिक संस्थाओं का अध्ययन किया । उन्होंने जाति विरोधी विद्रोह की पताका फहराई। राम मोहन राय, देवेन्द्र नाथ टैगोर, केशवचन्द्र सेन जैसे प्रबुद्ध भारतीयों ने जाति सुधार को अपने कार्यक्रम का मूलभूत तत्व बनाया । जैसे-जैसे हिन्दू समाज के निम्नतम स्तर में शिक्षा का प्रसार हुआ, वैसे-वैसे हिन्दू समाज के चिर कालीन अन्याय के शिकार इन वर्गों में साम्यभाव का उदय हुआ । फलस्वरूप डा0 अम्बेडकर के नेतृत्व में दलित जातियों में आन्दोलन और दक्षिण भारत के सेल्फ रेस्पेक्ट मूवमेन्ट जैसे जाति विरोधी आन्दोलनों का जन्म हुआ ।[1]

**राजनीतिक आन्दोलनों का प्रभाव**

जाति चेतना को दुर्बल करने में राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास की बहुत बड़ी भूमिका रही है । भारत में विदेशी शासन के कारण लोगों को राष्ट्रीय पैमाने पर संगठित होने की आवश्यकता महसूस होती रही । जैसे-जैसे विदेशी शासन के विरूद्ध राष्ट्रीय संघर्ष व्यापक और तीव्र हुआ, वैसे वैसे संकीर्ण स्थानीय, प्रांतीय, जातिगत और सांप्रदायिक चेतना भी

---

1. पायनियर, दैनिक समाचार पत्र, 1987 - 10 नवम्बर, पृष्ठ 5.

कमजोर हुई । लिबरल फेडरेशन, इंडियन नेशनल कांग्रेस आदि संस्थानाओं के कार्यक्रम, युद्धनीति और कार्यपद्धति भिन्न हो सकती है, लेकिन इनका आधार जाति या संप्रदाय नहीं था। इन्होंने जाति और धर्म से ऊपर उठकर सारे भारतीयों का आहवान किया । इन्होंने भारत के लिए जिस राजनीतिक रूप रेखा की कल्पना की उसमें जातियों के विशेषाधिकार के लिए कोई स्थान नही था । 1921-22 के असहयोग आन्दोलनों और 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन जैसे राजनीतिक आन्दोलनो के बाद भारत में राष्ट्रीय चेतना काफी मजबूत हुई। इन आन्दोलनों के कार्यक्रम और युद्ध पद्धति चाहे जो भी हो, स्वयं राष्ट्रीय चेतना के प्रतिफलन थे और इन्होनें इस चेतना को गहराई और व्यापकता प्रदान की । इस तरह राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास ने भी कुद हद तक हिन्दुओं की जातिगत चेतना का कमजोर किया। वस्तुतः वर्गजन्य एवं राष्ट्रीय दोनो प्रकार के आन्दोलनों ने भारतीय जनता की वर्ग चेतना को दुर्बल बनाया ।

**जाति प्रथा का प्रतिक्रियावादी रूप**

ब्रिटिश शासन काल में स्थापित आधुनिक अर्थतंत्र और राष्ट्रीय स्वातंत्रय के संघर्ष ये विजय के लिये आवश्यक राष्ट्रीय एक्य की राह में नीति व्यवस्था बाधा स्वरूप थी। औद्योगिक विकास के लिये श्रम आपूर्ति की आवश्यकता थी। जाति के नियमों के अनुसार सभी के लिए पैतृक पेशा अपनाना जरूरी था और इस तरह उद्योगों के लिए पर्याप्त संख्या में मजदूरों का मिलना मुश्किलथा । जाति भक्ति का स्थान सर्वोपरि था, इसलिए राष्ट्रवाद जैसे

वृहत्ता विचारतंत्र के प्रति भक्ति का स्थान बाद में आना ही था। कारीगरों की बर्बादी और किसानों के दारिद्रय के कारण यह आवश्यक हो गया कि ये लोग दूसरे पेशे अख्तियार करें व्यक्ति स्वातंत्र्य जैसे प्रजातांत्रिक विचारों के प्रचार के कारण शिक्षित भारतीयों में जातिगत विभेद और असमानता के प्रति विद्रोह की भावना जगी इस तरह धीरे धीरे जाति विरोधी आन्दोलनों का जन्म हुआ और वे शक्तिशाली हुये, यद्यपि सजातिय विवाह की व्यवस्था, जो जाति प्रथा का मूल आधार ही आत्मसमर्पण मानव के बीच जन्म या उत्तराधिकार पर आधारित काल्पनिक विभेद, सांसारिक सुख के प्रति निरपेक्षता जो भाग्यवाद का रूप ले सकता था, ये हमारी प्राचीन समाज के मूल सिद्धान्त हैं । इन्हीं से आज हमारा पारिवारिक प्रबन्ध निर्धारित होता है और इन्हीं के कारण हमारे समाज में पुरूष स्त्री, स्त्री के अधीनस्थ है और उच्च जाति के लोग अधीनस्त निम्न जाति । इस तरह लोगों में मानव जाति के प्रति कोई श्रद्धा नहीं रह गई।[1]

समाज सुधारकों ने सामाजिक वैषम्य और पार्थक्य पर चोट की और समानता और सहयोग का समर्थन किया । उन्होंने जनम और उत्त्राधिकार को विभेद का आधार मानने से इन्कार कर दिया । कर्म के सिद्धान्त का विरोध किया । गैर प्रजातांत्रिक एकतांत्रिक जाति व्यवस्था को इससे धार्मिक दार्शनिक बल मिलता था । उन्होंने लोगों से अपील की कि मृत्यु परान्त मुक्ति के लिये प्रयास करने के बदले के वास्तविक दुनिया में अपनी स्थिति सुधार

---

1. इण्डियन स्कूल रिफार्म खण्ड 2, पृष्ठ 91.

करें। उनके अनुसार राष्ट्रीय एक्य और संगठन के रास्ते में जाति व्यवस्था बहुत बड़ी बाधा थी।[1]

विभिन्न सुधार दलों ने विभिन्न दृष्टियों से जाति व्यवस्था पर आघात किया। ब्रहम वह अक्षुण्ण रही । जाति व्यवस्था के कारण सामाजिक जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी सुधार की प्रक्रिया अवरूद्ध रही "हमारी तरफ, मेरा आशय गुजरात से हैं, जाति समाज सुधार के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा रही है ।[2]

शिक्षित भारतीयों ने ही जाति व्यवस्था पर आघात किया क्योंकि उन्होंने नये भारत के सन्दर्भ में इसकी असंगति को पहचाना। राष्ट्रीय स्वतंत्रता और देश की राजनीतिक सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक प्रगति के लिये जाति संरचना का सुधार या उन्मूलन आवश्यक था। व्यक्ति की स्वतंत्रता मान्य होनी चाहिए थी, और जाति की जकड़ से व्यक्ति, की पहल कदमा को मुक्त होना था। तभी देश के सभी व्यक्तियों की क्रियात्मक शक्ति का स्फुरण सम्भव था एक जमाने में कहा जाता था कि मृत्यु के बाद आदमी को अपवर्ग तभी मिलेगा जब जाति के नियमों का पालन हो अब समाज सुधारकों ने राष्ट्रीय प्रगति को मानव जीवन का ध्येय बताया ।[3]

---

1. फिलासफी ऑफ ब्रहमाइज्म, पृष्ठ संख्या 330.
2. लेडी विद्या गौरी नीलकंड, धुर्ये द्वारा पृष्ठ 161.
3. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि 194.

**जाति प्रथा के विरूद्ध आन्दोलन**

समाज सुधारकों ने मध्ययुगीन समाज व्यवस्था के आधारभूत विचारों पर ही आघात किया । पृथकता, अंतर्विवेक के बदले वाध्य शक्तियों के प्रति समाज के संस्थापक राजा राम मोहन राय ने हिन्दुओं के प्राचीन समाज शास्त्रीय धर्म ग्रन्थ महानिर्वाण तंत्र की मदद से यह सिद्ध किया कि जाति व्यवस्था की अब कोई आवश्यकता नहीं । ब्रह्म समाज ने इन शब्दों में जातिजन्य सामाजिक विभाजनों की निदा की, ये हानिकर विभेद जो हमारे जन जीवन का खून पी रहे हैं, कब समाप्त होंगें? देवों ने इस देश के लिये जिए श्रेष्ठ, उत्कृष्ठ निर्यात का विधान किया है उसे पूरा कर सकने के लिये यह देश कब संगठित और शक्तिशाली हो सकेगा? इससे बड़ा सत्य कोई नहीं कि जाति व्यवस्था, जो हमारे समाज की सारी बुराइयों के मूल में हैं, के पूर्व उन्मूलन के बिना इस नियति पूर्ति नहीं हो सकती ।[1]

देवेन्द्र नाथ टैगोर और केशवचन्द्र सेन, जो राजा राम मोहन राय के बाद ब्रह्म समाज के नेता हुए हिन्दू धर्मग्रन्थों के उनसे भी बड़े आलोचक थे। केशवचन्द्र सेन ने धर्मग्रंथों की मदद के बिना, बड़े साफ शब्दों में जाति व्यवस्था की घोर तम निन्दा की। राजाराम मोहन राय ने सामाजिक विद्रोह की जिस भावना का उद्घाटन किया, उसकी चरम परिणति हुई केशवचन्द्र सेन के नेतृत्व में।[2]

---

1. फिलासफी ऑफ ब्रहमइज्म पृष्ठ संख्या 331.
2. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठ भूमि - पृष्ठ संख्या - 195.

ब्रह्म समाज ने जाति विरोधी आन्दोलन की जो शुरूआत की, उसके बाद क संगठनों ने उन्हें जारी रखा। बांबे प्रार्थना समाज ने जाति विरोधी आन्दोलन लगभग उसी तौर पर चलाया जिस तौर पर ब्रहम समाज ने चलाया था। पाश्चात्यदेशों के प्रजातांत्रिक और सांस्कृतिक प्रभाव में ब्रहम समाज और प्रार्थना समाज दोनों ने जाति नामक संस्था की ही आलोचना की । इसके विपरीत स्वामी दयानन्द के आर्य समाज ने जाति व्यवस्था का विरोध नहीं किया, वरन चार वर्णो पर आधारित वैदिक काल के हिनदू समाज को पुनरूज्जीवित करना चाहा । आर्य समाज ने हिन्दू समाज के अनगिनत उप विभाजनों के विरूद्ध संघर्ष तो किया, लेकिन शुरू के चार विभाजनों के आधार पर इसके नव निर्माण की जाति शूद्रों को भी धर्म ग्रन्थों के पठन-पाठन का अधिकार दिया जाए । इस तरह ब्रहम-समाज और प्रार्थना समाज जाति भंजक आंदोलन थे, लेकिन आर्य समाज उपजातियों के उन्मूलन के द्वारा जाति व्यवस्था में सुधार लाने के पक्ष में था।

ब्रहम समाज प्रार्थना समाज और आर्य समाज के अतिरिक्त भी जाति विरोधी आंदोलन हुए । तेलंग, रानाडे और फूले, जिन्होनें 1873 में सत्य शोधक समाज की स्थपना की, और मालावारी, कवि नर्मद और अन्य लोगों ने भी जाति व्यवस्था का जमकर विरोध किया। दक्षिण में सेल्फ रिसपेक्ट मूवमेंट ने उन अपमानजनक अपंगताओंके विरूद्ध संघर्ष किया जिनसे गैर ब्राहमण जातियाँ पीड़ित थीं।

भारतके राष्ट्रीय आन्दोलन के वामपंथी नेताओं ने यह तर्क उपस्थित किया कि चूंकि प्रति गामी सामाजिक संस्थायें देश के निम्न आर्थिक विकास पर निर्भर है और चूंकि देश के आर्थिक विकास की इस स्थिति का कारण यह है कि भारतीय जनता के हाथ में राजनीतिक सत्ता नहीं है, इसलिये भारतीय समाज के नवनिर्माण के लिये राष्ट्रीय स्वतंत्रता अनिवार्य है । इस तरह जाति व्यवस्था का उन्मूलन राष्ट्रीय स्वतंत्रता के प्रश्न से जुड़ा माना गया है। सामाजिक और सांस्कृतिक पिछड़ापन आर्थिक पिछड़ापन और राजनीतिक गुलामी का परिणाम है उसकी अभिव्यक्ति है..... इसका मूल कारण आर्थिक राजनीति है।[1]

वामपंथी नेताओं का विचार था कि भारतीय समाज का मूलभूत सुधार तभी संभव है जब भारतीय जनता को आत्मशासन का अधिकार मिले, इसलिये उन्होंने स्वराज के लिय अधिकाधिकघोरतम संघर्ष किये ।

जाति प्रथा के विरोध में श्रीमती उमा नेहरू ने कहा - परिवर्तन सामाजिक जीवन का एक अति महान अंश है उन्नति केवल सुपरिवर्तन का नाम है परिवर्तन से विमुख होना मानों उन्नति का द्वार बन्द कर देना है परिवर्तन से डरने का वास्तविक कारण क्या है ?[2] परम्परा पूजन अथवा रीति-रिवाजों तथा संस्थाओं का अनुगमन उनके भले-बुरे होने का विचार न करते हुये केवल इसलिए करना है कि वह पुरानी हैं इस विनाशक नियम के पुष्टि के बारे

---

1. आर.पी. दत्त इण्डिया टुडे पृ0 संख्या 7.
2. पत्रिका चाँद, नवम्बर 1935 पृष्ठ - 178.

में दो बातें कहीं जाती है एक तो हमारे बाप कुछ मूर्ख न थे जो कर गये ठीक कर गये हैं दूसरा यह कि मर्यादा से किंचित मात्र हट जाना हिन्दू जाति के व्यक्तित्व को खो बैठना है।[1]

मानव धर्म का एकमात्र उद्देश्य जगत में एकता, समानता और पारस्परिक प्रेम को फैलाना होता है जातीय नियम के प्रचार ने हमारी एकता, समानता और पारस्परिक प्रेम का नाश कर दिया है ।

मानव धर्म का एक मात्र उद्देश्य धर्म को प्रबल बनाना है वैदिक युग में जो एक क्षत्रिय जाति थी वह अब 590 टुकड़ों में विभाजित हो गई है । वह ब्राहमण जाति जो एकता की मर्यादा और हिन्दू जाति की मस्तकथी अब एक हजार आठ सौ पिचासी टुकड़ों में विभाजित है । इन भिन्न भिन्न टुकड़ों में एक दूसरें की ओर से उससे अधिक द्वेष घृणा और शत्रुता है। जितनी दो गैर मजहब वालों में आजकर पायी जाती है । दो ब्राहमण पारस्परिक व्यवहार में एक दूसरे से उतना ही विलग दिखाई देते है जितना कि एक मुसलमान इसाई से ।[2]

---

1. पत्रिका चाँद, नवम्बर 1935, पृष्ठ 179.
2. पत्रिका चाँद, नवम्बर 1935, पृष्ठ 181.

जातीय भेद ने हमारे समाज के सैकड़ो टुकड़े कर दिये है ये टुकड़े एक दूसरे से वंचित रहने से आदर्श की अंधेरी गुफा में ऐसे बन्द रहते है कि जातीयता के सूर्य की प्रभा इन तक पहुँच ही नहीं पाती है हमारा तो अजब हाल है । जहा कोई देश भक्त इन गुफाओं को विशाल करने की ओर इनमें जातीयता की प्रभा पहुचाने की चेष्टा करता है । हम उसे अधर्मी और पश्चिमी समझ बैठते हैं। हम तो यह समझते हैं कि अधर्मी वह है जो देश विनाशक रीतियों का पालन करे जो इन्हें जीवित रखने की धुन में अपनी सुध बिसार दे। जो आर्य जाति को अपनी प्राचीन एकता और गौरव प्राप्त करने में समर्थ न बनने दे।

हिन्दू जाति में इतनी शक्ति न था कि वह परिवर्तन को रोक सकती और न इतनी बुद्धि है कि इस परिवर्तन को इस संसार गति का एक प्राकृतिक परिणाम समझ कर इसका सहर्ष स्वागत करें । जिस परिवर्तन को अन्य देश अपना सौभाग्य समझते हैं वह इस आभागी जाति को साक्षात काल रूप दिखाई पड़ता है । उन स्वतंत्र धैर्यशील व्यक्तियों को जिन्हें संसार पूज्यनीय समझता है । वह अपनी निर्दयता से अपनी शरण छोड़ देने को विवश कर देती है ।[1]

---

1. पत्रिका चाँद , नवम्बर 1935 पृष्ठ 183.

इस समय हमारा समाज घोर आपत्ति में पड़ा है यदि अनतःकरण का साथ दिया जाय तो हिन्दू धर्म छूटता है यदि अन्तःकरण का साथ न दिया जाय तो धर्म ही निरर्धम हो जाता है । ।

श्रीमती एनी बेसेन्ट ने जातियता के खिलाफ अपनी आवाज बुलन्द की, उन्होंने विश्व कल्याण और हिन्दुत्व के बारे में अपना विचार व्यक्त किया और अपने को सनातन धर्म पलियानी सभा से सम्बद्ध रखा । उन्होंने 1913 से सामाजिक सुधार का कार्य शुरू किया जातियता के बारे में उनका ख्याल था जाति सामाज और देश के अलावा स्त्री जाति के साथ भी जाति प्रथा का एक विशेष सम्बन्ध है मसव समाज में विवाह स्त्री की जीविका है और ऐसी दशा में जातियता उस क्षेत्र का परिमित होना है जिसमें उसके लिये पति चुना जाता है ।[1]

अप्रजा तांत्रिक जाति व्यवस्था जन्य सामाजिक, धार्मिक न्यायिक अपंगताओं से पीड़ित हिन्दू समाज की निम्न जातियों के आन्दोलन के दो रूप थे प्रगतिशील एवं अराष्ट्रवादी और प्रतिगामी । निम्न जातियों ने जाति के आधार पर अपने संगठन बनाये और जन तांत्रिक स्वतंत्रता के लिये संघर्ष किये तो इससे सारे देश की जनता के ऐक्य की लड़ाई को बल मिला ।[2] संप्रदायवाद एक तरफ विशेषाधिकार और दूसरी तरफ अपंगताओं पर फसता

---

1. इण्डियन वुमेन फ्रीडम फाइटर्स एण्ड सोशल रिफार्मस 1857-1947,पृ0सं065.

2. पत्रिका चाँद-नवम्बर,1936 पृ0 संख्या 160.

फूलता है । जनतांत्रिक स्वतंत्रता की प्राप्ति और समाज की पदानुक्रमिक संरचना पर आधारित सामाजिक और न्यायिक असमानताओं के उन्मूलन से ही सम्प्रदायवाद समाप्त होगा और तब के सम्प्रदायों के सदस्यों के बीच विभेद नहीं रह जायेगे ।[1]

लकिन देश के संविधान में अपने विशिष्ट अधिकार के लिए संगठित होकर पृथक चुनाव क्षेत्रों की माँग करना प्रतिक्रियावादी एवं राष्ट्रविरोधी कार्य है । पृथक चुनाव क्षेत्रों से तो सम्प्रदाय वाद को और अधिक बल मिलेगा। समाज के सांप्रदायिक विभाजन और अधिक स्थाई और दृढ़ होगें । अगर निम्न जाति के लोग यह मांग करतेहै कि उनकी प्रतिभा के विकास के रास्तें में समाज की पदानुक्रमित संरचना ने जो विशिष्ट बाधा ला खड़ी की है उसे हटाया जाय तो यह एक सही जनतांत्रिक माँग होगी इस तरह से लोगों की रचनात्मक प्रतिभा के विकास का रास्ता प्रशस्त होगा । अगर कोई जाति विशेषाधिकार माँगती है तो उसका काम गैर जनतांत्रिक और राष्ट्रविरोधी होगा दलित जाति के सदस्यों के अपने सम्मिलत नकारात्मक हित थे, क्योंकि वे अपने सामाजिक आर्थिक अपंगताओं को समाप्त करना चाहते थे।[2]

ऐसे ही गैर ब्राहमण जातियों का भी अपना कोई निश्चित स्वार्थ संभव नहीं

---

1. पत्रिका चांद , नवम्बर 1936. पृष्ठ 160.
2. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 190.

था ये जातियाँ कारीगरों, खेत मजदूरों, जमींदारों, मिल मजदूरों, बटाईदारों, और अन्यान्य से बनी थी, इन उपविभाजनो के स्वार्थ बिल्कुल भिन्न थे । ब्राहमण विरोधी आन्दोलन तभी तक सही और प्रगतिशील था जब तक उसने न्यायिक और सामाजिक अपंगताओं को हटाने का संघर्ष किया । विशिष्ट प्रतिनिधित्व जो सम्मिलित स्वार्थो का दम भरता था बेमानी का क्योंकि गैर ब्राहमण सप्रदाय की विभिन्न जानियों के अपने कोई सम्मिलत स्वार्थ नहीं थे । वस्तुतः गैर ब्राहमण मिल मालिकों के आर्थिक और राजनीतिक स्वार्थ की पूर्ति मिल मालिकों के संगठन ये शामिल होने से ही होती और यह संगठन सब जातियों और सम्प्रदायों के मिल मालिकों का संगठन था उसी तौर पर गैर ब्राहमण मजदूरों के स्वार्थो की पूर्ति विभिन्न जातियाँ और सम्प्रदायों के मजदूरों के संगठन द्वारा ही संभव थी।

भारतीय जनता की अनुगामी शक्तियाँ जाति निरक्षरता, अछूतों की स्थिति और जो कुछ भी लोगों को पिछड़ा बनाये है । उन सबके विरूद्ध संघर्ष का नेतृत्व कर रही है । सनातन भारतीय सम्पना और उसके अपरिवर्तनीय वलक्षणों पर विद्धतापूर्ण व्याख्यान दिये जा रहे हैं, और उधर बहुसंख्यक लोगों द्वारा समर्थित राष्ट्रीय आन्दोलन ने अपनी संघर्ष पताका पर नारे लिख रखे हैं, जाति, धर्म सेक्स निरपेक्ष, विश्व जर्नान, सम नागरिकता की सभी पदवियों और विशेषाधिकारों के उन्मूलन के सार्वजनिक वयस्क

मताधिकार और सार्वजनिक निःशुल्क शिक्षा के, धर्म के मामले में राज्य की निष्पयना के, पाक् स्वतंत्रता और प्रेस, विवेक, संगठन और सभा की स्वतंत्रता के नारे जो ब्रिटेन के अर्धप्रजातंत्र की मान्यताओं से काफी आगे बढ़े हुये थे।[1]

महत्वपूर्ण देशी और विदेशी घटनाओं का भी लोगों के विभाग पर प्रभाव पड़ा। उनसे जनजीवन आन्दोलित हुआ और लोगों के मन में इच्छा बलवती हुई कि वे पुरानी संस्थाओं और रहन-सहन से आगे बढ़े । 1514· की बड़ाई के बाद इस प्रक्रिया में और तेजी आयी ।

युद्ध विराम के 18 वर्ष बाद हम यह समझते हैं कि भारत का पुराना संलग्न, विश्व शक्तियाँ द्वारा अप्रभावित, फिर कभी वापस नहीं आयेगा ।[2] ब्रिटिश राज की रूढिवादिता ने युग सम्मन बुराइयों को समर्थन प्रदान किया था । प्रजातंत्र की परिवर्तन परक भावना ने मत के लिये एक दूसरे के होड़ में लगी हुई पार्टियों के माध्यम से कार्य किया और मताधिकार के साथ शक्ति का अहसास हुआ । इन सबके कारण पुराने विशेषधिकारों अंत अवश्यभावी था, विशेषाधिकार जिन्हें बुद्धि बल और साहस का समर्थन प्राप्त नही था । जातिगत विशेषाधिकार के पथ पर पीछे हट रहे है और

---

1. आर.पी. दत्त, इण्डिया टुडे, संख्या 500.
2. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक, पृष्ठभूमि, 190.

लगता है अब उनमें भगदड़ मच जायेगी ....... अगर छुआछूत खत्म होने वाला हो वो जातिगत विभेद कैसे रह सकेगें? हिन्दू धर्म शक्ति न तो विधायिका सभाओं में हैं और मन्दिरों में, वरन् घर के अन्दर हैं । लेकिन घर में भी स्त्री शिक्षा के माध्यम इसे आधुनिकता की भावना तेजी से काम कर रही है । हिन्दू संयुक्त परिवार जो जाति का मूलाधार है, स्त्री शिक्षा, आवागमन एवं यात्रा की सुविधा और विदेशों से सम्पर्क के कारण खंडित हो रहा है ।[1]

**प्रभाव**

बहुत सारी वस्तुगत और भावगत शक्तियों का जाति व्यवस्था पर काफी बुरा प्रभाव पड़ा । जाति का पेशागत आधार बेतरह कमजोर हो गया, नये समानान्तर राजनीतिक आर्थिक और सांस्कृतिक संगठन बने जिन्होंने विभिन्न जातियों के सम्मिलित स्वार्थ वाले लोगों को एक जुट किया । इन संगठनों और इन नई चेतना के जो नये रूप सामने आ रहे थे उनके कारण जाति संगठनों का महत्व बहुत कम हुआ और जाति भावना कमजोर हुई ।[2]

कानून के क्षेत्र में जाति के विशेषाधिकार लगभग समाप्त हो गये, पुराने तौर

---

1. मेनचेस्टर गार्जियन वीकली, दिसम्बर, 1936.
2. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ, 194.

तरीकों, रहन-सहन आदि, और लोगों की जड़ता के कारण सामजिक क्षेत्र में ये जीवित रहे। विजातिय लोगों के साथ खान-पान विषयक जाति के कानून अक्सर भंग होते रहे और शहरों में व्यवहारतः लगभग समाप्त हो गये । लेकिन सजातीय व्याह जाति व्यवस्था का सबसे बड़ा आधार था और यह प्रथा ज्यों की त्यों बनी रही, जाति के बाहर शादी व्याह अपवाद बना रहा ।

फिर भी जाति के प्रगतिशील उन्मूलन की प्रद्धति जारी रही । व्यापक आर्थिक विकास शिक्षा के प्रसार राष्ट्रीय और वर्गगत आन्दोलन के विस्तार एवं राजनीतिक स्वतंत्रता और प्रगति के साथ-साथ जाति व्यवस्था के विनाश की प्रक्रिया अवश्य काफी तेज होगी । प्रकृति की तरह समाज में भी प्रगति और ह्रास समरूप गति से नही होता। युगों की संचित जाति विरोधी चेतना कभी न कभी तो व्यापक जाति जाति विरोधी विद्रोह का रूप लेती है, शादी व्याह के मामलों में भी। सजातीय ब्याह जाति प्रथा का अंतिम मूल स्तंभ हैं, और इसके समाप्त होते ही जाति का महत्व धारा शादी हो जाएगा ।[1]

सुभद्रा कुमार चौहान जो जातीयता की प्रबल विरोधी थीं उसका प्रमाण उन्होंने अपनी पुत्री सुधा का विवाह, भारत के उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द के पुत्र अमृत राय से करके प्रस्तुत किया।[2]

---

1. ए. आर. देसाई भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि-पृष्ठ संख्या 194.
2. ऊषा भट्ट इन्डियन वुमेन फ्रीडम फाइटर्स इण्ड सोशल रिफार्मस - पृष्ठ 83.

श्रीमती नायडू जो एक ब्राहमण की बेटी थीं फिर भी उनमें जातियता का तनिक भी अंश न था, जो राष्ट्रीयता के विरूद्ध पड़ सके । उन्होंने मुस्लिम संस्कृत की भी सदा रक्षा की है । इसका प्रमाण यही है कि हैदराबाद के मुस्लिम और हिन्दू दोनो स्थानों में श्रीमती नायडू का एक सा सम्मान है 1913 के मुस्लिम लीग के लखनऊ अधिवेशन में इन्होनें हिन्दू, मुस्लिम एकता पर अभूतपूर्व भाषण दिया, 1915 में उन्होंने सर्वप्रथम कांग्रेस के अधिवेशन में भाग किया, हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए तो सदा उनके दिन में एक कसक घर किये रही।[1]

1917 के पटना अधिवेशन में आपने कहा था इस विशाल देश ने मुसलमान अपना घर बनाने आये थे वे इसलिये नही आये थे कि वे यहाँ से लूट कर अपने घर जाय वे इस देश में अपना स्थाई घर बनाने आये थे और मातृभूमि को सम्पन्न बनाने के लिये नई संस्कृति पैदा करना ही उनका उद्देश्य था।[2]

तब से इस भूमि के बच्चों से कैसे अलग रह सकते हैं क्या इतिहास यही बताता है कि वे हिन्दुओं से पृथक थे? अथवा यह बताता है कि एक बार इस देश को मातृभूमि बना लेने के बाद वे इस भूमि के बच्चे बन गये और हम आख की आँख की आँख और खून के खून हो गये ।[3]

---

1. देश के रत्न ओंकार शरद पृष्ठ 269.
2. वही......... पृष्ठ 272.
3. वही........... 273.

1925 कानपुर कांग्रेस में कांग्रेस की अध्यक्षा पद से उन्होंने कहा - भारत माता की आज्ञा कारिणी पुत्री होने के कारण मेरा पहला काम यह होना कि अपनी माता का घर ठीक करूं और शोचनीय झगड़ों को ठीक कराऊं । जिसमें उनका पुराना संयुक्त पारिवारिक जीवन जिसमें अनेक जातियाँ और धर्म शामिल है भंग न हो जाय।[1]

---

1. देश देश के रत्न ओकार शरद, पृष्ठ संख्या 273.

## निष्कर्ष

19वीं शताब्दी में भारतवर्ष में कई धार्मिक और समाज सुधार आन्दोलन हुये। जिनमें ब्रहम समाज प्रार्थना, समाज आर्य समाज रामकृष्ण मिशन और थियोसोफिकल सोसायटी प्रमुख थे ।

इन आन्दोलनों के माध्यम से राजाराम मोहन राय, केशवचन्द्र सेन, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, महादेव गोविन्द रानाडे स्वामी विवेकानन्द और श्रीमती एनी बेसेन्ट इत्यादि ने इस देश में धर्म और समाज में जो विकास आ गये थे उनके उनमूलन का प्रयास किया ।

इस कार्य में पंडित ईश्वर चन्द विधासागर बी.एम. मलाबारी, डी.के. कर्वे, पांडुरंग बन्धु और पंडिता रमाबाई ने भी यथोचित योगदान दिया ।

19वीं शताब्दी के सामाजिक सुधारों में दो दिशायें स्पष्ट हैं, जाति प्रथा का विरोध और स्त्रियों की दशा में सुधार । सभी आन्दोलन बुनियादी तौर पर इन दोनो क्षेत्रों में सक्रिय रहे। जहाँ तक सफलता का प्रश्न है अधिकतर विद्वान यह विचार रखते है कि सफलता कम ही मिली यह भी सत्य है कि समाज सुधार आन्दोलन में अधिकतर भागीदारी पुरूषों की ही थी यद्यपि रामाबाई, श्रीमती ब्लावात्सकी एवं एनी बेसेन्ट का नाम इस आन्दोलन से जुड़ा हुआ हैं।

इसका एक प्रमुख कारण सम्भवतः यह था कि 19वीं शताब्दी में भारत में स्त्री शिक्षा का विकास अधिक नही हो सका था। हर आयोग की सिफारिशों (1882) में कहा गया कि प्राथमिक और स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में विशेष प्रयास की आवश्यकता हैं । बिना शैक्षिक विकास के महिलाओं का योगदान भी कठिन ही था। इसीलिये बीसवीं शताब्दी में भी समाज सुधार आन्दोलन में महिलाओं ने प्रथम विश्व युद्ध के बाद ही विशेश कार्य किया । इजाबेला थाबर जैसी महिलायें उत्तर प्रदेश के शैक्षिक विकास में अपवाद ही हैं।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात बालिकाओं की शिक्षा से सम्बन्धित आन्दोलन में कई महिलाओं ने योगदान दिया जिनमें रानी साहिबा सांगली, श्रीमती एनी बेसेन्ट, श्री मती सरोजनी नायडू, श्रीमती कैलाश श्रीवास्तव, श्रीमती मृत्यु लक्ष्मी रेड्डी श्री मती इन्दु दिवान के नाम महत्वपूर्ण हैं। शिक्षा के क्षेत्र में द्वितीय महायुद्ध के पश्चात विशेष प्रति हुई और बालिकाओं के स्कूल और कालेज संस्था में बढ़ते ही गये ।

शिक्षा के विकास के साथ विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ने लगी उनका कार्य क्षेत्र केवल स्त्री विकास ही नहीं रह गया बल्कि अस्पृश्यता निवारण, स्वतंत्रता आन्दोलन और देश के आर्थिक विकास में भी महिलाओं ने योगदान दिया।

अब महिलायें घर की चाहदिवारी छोड़कर समाज के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने लगीं । अध्यापन, चिकित्सा दो ऐसे क्षेत्र है । जिनमें महिलाओं ने सबसे अधिक कार्य किया ।

सन् 1930 के बाद राष्ट्रीय आन्दोलन में भी महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उत्तर प्रदेश की लक्ष्मी सहगल को ाि सुभाषचन्द्र बोस की आजाद हिन्द फौज की अधिकारी बनने का भी गौर मिला ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महिलाओं का कार्य क्षेत्र और भी बढ़ा और वे प्रशासन, राजनीति, प्रबन्ध कार्य उत्पादन उद्योग, कृषि इत्यादि सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण पदों पर कार्य करने लगीं। बाद में तो पुलिस सेना, नौसेना, और वायुसेना, इत्यादि में भी स्त्रियाँ कार्य करने को उद्यत हुई । इसके अतिरिक्त पत्रकारिता, छायाकंन फिल्म निर्माण और कई नये क्षेत्रों में भी महिलाओं ने प्रवेश किया ।

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी को बीस-बीस वर्ष के काल खण्ड में विभाजित किया जा सकता हैं जैसे 1900-1920, 1920 से 1939, 1940 से 1964 तीनों काल खण्डों में महिलाओं की गति विधियों में स्पष्ट अन्तर परिलक्षित होता हैं ।

उत्तर प्रदेश में सामाजिक पिछड़ापन बहुत अधिक था इस क्षेत्र में बाल विवाह की प्रथा अत्यन्त पुरानी थी कम अवस्था में विवाह होने से लड़कियों और लड़कों दोनो को हानि होती थी। लड़कियां कम अवस्था में मातृत्व के कारण अपना स्वास्थ्य खो बैठती थीं और लड़के भी स्वस्थ नहीं रह पाते थे । छोटे बच्चों की मृत्यु बड़ी संख्या में होती थी सन् 1929 में इस कुप्रथा को रोकने के लिये दिवान हरबिलास शारदा के प्रयत्नों से एक कानून बनाया गया जिसमें बालक-बालिकाओं के विवाह की न्यूनतम आयु निर्धारित हुई। इसके बावजूद भी बाल-विवाह पर अधिक प्रभाव न पड़ सका और समस्या के समाधान के लिये समय समय पर महिला कांफ्रेस, प्रान्तीय महिला सम्मेलन इत्यादि आयोजित किये गये। श्री मती बृजलाल नेहरू, उमा नेहरू और नेहरू परिवार की अन्य महिलाओं ने स्त्रियों से सम्बन्धित समस्याओं के निराकरण के लिए विशेष कार्य किये ।

विधवा विवाह की समस्या भी बाल विवाह से जुड़ी हुई थी विधवाओं की समस्या का स्थायी समाधान उनके विवाह से ही हो सकता था।

इस क्षेत्र में पंडित ईश्वर चंद विद्यासागर के समय से जो कार्य हो रहा हैं उसमें लगभग 140 वर्षो में बहुत मामुली प्रगति हुई हैं । केवल कुद क्षेत्रों में ही जवान

विधवाओं के विवाह की स्थिति बनती हैं । चालीस वर्ष की अवस्था के पश्चात् न तो विधवायें स्वयं विवाह करना चाहती हैं और न उन्हेंविवाह योगय इच्छुक वर मिलते हैं। भारतीय समाज में इस अवस्था को प्राप्त करने पर यह सामान्य तौर से मान लिया जाता है कि अब वह स्त्री कुमारी हो अथवा विधवा, उसे विवाह की कोई आवश्यकता ही नहीं है। स्त्रियों की भी मानसिकता ऐसी ही बन जाती है और वे परिस्थितियों से समझौता कर लेती हैं । समाजशास्त्रियों की मान्यता है कि पाश्चात्य समाज में इससे बिल्कुल भिन्न विचारधारा प्रचलित हैं वहाँ स्त्री अथवा पुरूष के विवाह की कोई सीमा नहीं है और 65 , 70 वर्ष की अवस्था के लोग भी विवाह करते हैं।

उत्तर प्रदेश को दो स्पष्ट भागों में विभाजित किया जा सकता हैं पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी उत्तर प्रदेश। वैसे तो इस प्रदेश का पहाड़ी क्षेत्र भी एक अलग इकाई केरूप में माना जा सकता हैं फिर भी विकास की दृष्टि से पूर्वी भाग अधिक पिछड़ा हुआ है और पश्चिमी भाग कृषि और उद्योग दोनों में अधिक विकसित हैं पिछड़ समाज में सामाजिक कुरीतियों का बाहुल्य होता हैं वहीं पर अज्ञान का अन्धकार भी होता हैं । जिसे दूर करना अत्यधिक धीमी गति से ही सम्भव हैं। राज्य के पूर्वी भाग में जाति प्रथा, अस्पृश्यता, दहेज बाल विवाह , बहु विवाह इत्यादि का रूप अधिक विकृत रहा हैं । इस क्षेत्र में आर्थिक विकास भी कम हुआ यहाँ तक की राजनीतिक दलों ने भी इस पिछड़े

क्षेत्र को अपने शोषण का शिकार बनाया है । इस क्षेत्र में उन्नीस सौ नौ से विभिन्न जातियों में अलगाव, साम्प्रदायिकता और इनसे उत्पन्न होने वाली समस्यायें बनी रहीं इसक विपरीत राज्य के पश्चिमी क्षेत्र में स्थिति भिन्न रही। पूर्वी क्षेत्र में शोध कार्य की काल सीमा तक समाज सुधार में महिलाओं की गतिविधियों पश्चिमी क्षेत्र में काफी कम रही।

भारत में कन्याओं की शिक्षा पर बीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षो में भी बालकों की शिक्षा से कम ध्यान दिया जाता है आज भी सामान्य परिवारों में पुत्री का विवाह और पुत्र की शिक्षा माता-पिता का प्रथम कर्त्तव्य माने जाते हैं ऐसे समाज में महिलाओं का स्थान समानता के स्तर पर कैसे आ सकता है जहाँ कन्या का जन्म ही दु:ख का कारण बन जाता हो उस परिवेश में स्त्री अपनी उचित भूमिका किस सीमा तक निभा सकती हैं समाज के पचास प्रतिशत अंग को यदि दूसरे अर्धभाग से नीचा मान लिया जाय तो संविधान कानूनी तौर पर समानता चाहे दे दे यर्थाथ नही हो सकती। जहाँ विभिन्न वर्गो को नौकरियों में आरक्षण प्रदान किया जाय और सामाजिक पिछड़ापन उसका आधार बने स्त्रियों को अपनी जनसंख्या केअनुपात में पचास प्रतिशत आरक्षण मिलना चाहिए।

समाज सुधार आन्दोलन में उत्तर प्रदेश में महिलाओं का योग दान इसी प्रकार

प्रभावित हुआ चाहे स्त्रियों के अधिकारों का प्रश्न हो अथवा उन्हें पुरूषों के समकक्ष लाने का इस क्षेत्र में अधिक सफलता नही मिलती । समाज सुधार के विभिन्न कार्यक्रमों में महिलाओं ने क्रमशः अपना योगदान पहले दिये गये तीनों काल खण्डों में दिया और स्वतंत्रता संग्राम में भी काफी भागीदारी की किनतु अधिकतर साहित्य यही प्रमाण प्रस्तुत करता है कि महिलाओं ने पुरूषों की आज्ञा से ही और उनके सहयोगी के रूप में ही विभिन्न दायरों में कार्य किया, चाहे बाल विवाह होय । अस्पृश्यता या दहेज अथवा बहुविवाह सभी आन्दोलनों में प्रमुख भूमिका पुरूषों की रही और महिलाओं ने उनके साथ सहयोग किया जहाँ जहाँ परिवार के पुरूषों ने महिलाओंका समर्थन किया वही महिलाओं ने भाग लिया ।

बीसवीं सदी के स्वतंत्रता एवं जन जागरण आन्दोलनों में भारत की नारियों में सामाजिक, राजनैतिक एवं शैक्षिक जागृति उत्पन्न किया और फलस्वरूप पंडित विजया लक्ष्मी, श्री मती इन्दिरा गांधी, श्रीमती सुचेता कृपलानी, श्रीमती सरोजनी नायडू, श्री मती मदिवी वर्मा आदि विदुषी महिलायें साहित्यिक, राजनैतिक तथा सामाजिक उत्कर्ष की उच्चतम तथा अनुपम प्रतीक बनी सकीं । उत्तर प्रदेश की क्या, समूचे भारत तथा विश्व की अनेक नारियां वर्तमान में उनसे मार्गदर्शन प्राप्त कर विज्ञान, साहित्य, राजनीति, शिक्षा

समाज सुधार एवं सभी क्षेत्रों में अनुपम व अग्रणी बन रही हैं ।

अस्पृश्यता हिन्दू समाज का एक माहन कलंक हैं। भारतीय समाज के लिये यह एक अभिशाप हैं । हिन्दू समाज स्पृश्य और अस्पृश्य दो भागों में विभाजित हैं । यह विभाजन अत्यन्त असंगत हैं । भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत समाज में एक ऐसा समुदाय भी विद्यमान है जिनके स्पर्श या निजकी छायाभाग से हिन्दू अपवित्र मान लिये जाते हैं । यह एक मनोवृत्ति हैं जिनमें यह भावना छिपी हुई है कि व्यक्ति विशेष या समुदाय विशेष छूने योगय नहीं हैं । इस समुदाय को दलित, अछूत शोषित, हरिजन, या अनुसूचित जातियोंकेनाम से जाना जाता हैं । अस्पृश्यता या छुआ-छूत सामाजिक असमानता का सबसे बड़ा उदाहरण हैं । इस समुदाय को न केवल अस्पृश्य ही घोषित किया गया हैं, बरन् उसे मूलाधिकारों से वंचित कर दिया गया है वे आराधनास्थलों ओर सामाजिक स्थलों में प्रवेश नहीं कर सकते हैं तालाबों और कुओं का उपयोग नहींकर सकते हैं । शिक्षा के अधिकार से उन्हें वंचित कर दिया गया तथा उनके पाठशालाओं और स्कूलों में प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया । उनके निवास, गॉवों, कस्बों और नगरों से दूर पृथक हुआ करते हैं । इन प्रतिबन्धों के कारण उनका भौतिक अध्यात्मिक और नैतिक अधःपतन हो गया । उनकी दशा गुलामों और अर्धदासों के समान है । वे असम्य और बर्बर समझे जाते हैं । अन्धकार और गर्त के पतन में वे

इतना डूब गये है कि उन्हें आशा की किरण कही भी नजर नही आती अछूतों की दशा सुधारने के लिये भिन्न भिन्न समयों में भिन्न भिन्न प्रयत्न किये गये । समाज सुधार की समस्याओं पर विचार किया गया ।

इसमें 1887 में 1901 तक न्यायमूर्ति रानाडे मैडमव्लावत्सकी और 1901 से 1920 तक चन्दावंरकर 1920 से 1948 तक गांधी जी तथा अम्बेडकर, श्रीमती उमा नेहरू, एनीबेसेन्ट, सुभद्रा कुमारी चौहान तथा 1948 से 1964 तक भीमराव अम्बेडकर श्री मती इन्दिरा गांधी, श्रीमती कमला नेहरू इत्यादि महिला समाज सुधारकों ने इसमें सुधार का प्रयास किया और वे सफल भी रहीं । इस तरह महिला समाज सुधारकों ने समाज की दशा सुधारने के लिये समय समय पर सभाये की और कानून पास कराये पर समाज और सरकारी की उपेक्षापूर्ण नीति के कारण वे कानून निरर्थक सिद्ध हुये ।

इस तरह स्त्री समाज सुधारकों ने पुरूषों की तरह महत्वपूर्ण कार्य किये वगैर महिलाओं के जागृत हुये बिना देश की प्रगति सम्भव नही हैं ।

## ग्रन्थ सूची


देसाई ए.आर. — भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि

घुर्ये, जी.एस. — कास्ट एंड इन्डिया (1932)

दत्त, आर.सी. — इण्डिया टुडे 1940.

बक, एम.ए. — 1. राइज एण्ड ग्रोथ आफ इंडियन लिबरलिज्म (1938)

2. राइज एण्ड ग्रोथ आफ इण्डियन मिलिटेड नेशनलिज्म (1940)

3. राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म (1939)

ओमेली — माडर्न इण्डिया एंड दि वेस्ट (1941)

रिजली सर ए.एच. — दि पीपल आफ इण्डिया (1915)

सेंवलंकर, के.एस. — प्राब्लम ऑफ इण्डिया, (1940)

ट्रैविनियन, सी.ई. — दि एजूकेशन ऑफ दी पीपुल ऑफ इण्डिया (1838)

याग्निक, आई.के. — पेजेन्ट्स रिवोल्ट्स (1939)

मुखर्जी, डी.पी. — मार्डन इण्डियन कल्चर (1942)

परांजपे, एम.आर. — अ सोर्स बुक ऑफ मार्डन इन्डियन एजूकेशन (1938)

सीतारमैया, पी. — दि हिस्ट्री ऑफ दी इण्डियन नेशनल कांग्रेस (1935)

पाठक, डा0 सुशील माधव — भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास (1857-1941)

फर्कुहर जे.एन. — मॉडर्न रिलीजस मूवमेन्टस् इन इण्डिया

राय लाल लाजपत — माडर्न रिलीजस मूवमेन्टस् इन इण्डिया

| | |
|---|---|
| जायसवाल, के.पी. | हिस्ट्री आफ इण्डिया (1935) |
| मथाई जान | विलेज गवर्नमेन्ट इन ब्रिटिश इण्डिया (1915) |
| बेसेन्ट एनी | हाऊ इण्डिया रौट फार फ्रीडम |
| मजूमदार अम्मू मेनन | सोसल वेलफेयर इन इण्डिया |
| बेसेन्ट, एनी | हायर एजूकेशन इन इण्डिया, पास्ट एण्ड प्रेसेन्ट, मद्रास (1932) |
| बोस, चन्द्र नाथ | हायर एजूकेशन इन इण्डिया, कलकत्ता (1878) |
| देसाई, डी0 | प्राइमरी एजूकेशन इन इण्डिया (1938) |
| गांधी, महात्मा, | यंग इण्डिया, मद्रास (1922) |
| गांधी, एम.के. | वुमेन एण्ड सोशल इन्जस्टिस अहमदाबाद. (1958) |
| मजुमदार आर.सी. व स्वामी माधवानन्द | ग्रेट वुमेन आफ इण्डिया, प्रथम एडीशन (1953) कलकत्ता। |
| नटराजन एस | ए सेन्च्युरी आफ सोशल रिफार्म इन इण्डिया (1959) |
| पथिक, जी.एस. | अबलाओं पर अत्याचार, अप्रैल (1927) |
| पाण्डेय, धनपति | दि आर्य समाज एण्ड इण्डियन नेशनलिज्म(1875-1920) |
| श्रीवास्तव एम0पी0 | सोसायटी एण्ड कल्चर इन मिडीवल इण्डिया |
| व्होरा, आशारानी | भारत की अग्रणी महिलायें. |
| वर्मा, मुकुट विहारी | स्त्री समस्या, स्त्री आन्दोलन का इतिहास |

| | |
|---|---|
| अय्यर सी.पी.रामास्वामी | एनी बेसेन्ट (1963) |
| रोलॉ रोम्यॉ | दी लाइफ ऑफ रामकृष्ण |
| नेहरू - जवाहरलाल | डिस्कवरी ऑफ इण्डिया |
| राय लाला लाजपत | हिस्ट्री आफ दी आर्य समाज |
| पारिख डा0 एस.के. | भारत की सामाजिक आर्थिक संरचना |
| दहीमाते ए.सी | एवं संस्कृति के तत्व |
| शरद ओंकार | इन्दिरा गांधी - (1934) |
| नेहरू रामेश्वरी | दि हरिजन मूवमेन्ट (1940) |
| नेहरू जवाहर लाल | ऐन आटो बाओग्राफी (1936) |
| नटराजन एस. | सोशल प्राब्लम्स (1942) |
| भट्ट उषा | इन्डियन वुमेन फ्रीडम फाइटर्स एण्ड सोशल रिफार्मस |
| वेस्ट | लाइफ ऑफ एनीवेसेन्ट |
| रावत पी.एल. | हिस्ट्री आफ इन्डियन एजूकेशन (1955) |
| कौर डा0 कुलदीप | एजूकेशन इन इण्डिया (1771-1985) |
| दत्त रजनीपाम | इण्डिया टुडे (1975) |
| आर. लिटिल हेल्स | प्रोग्रेस आफ एजूकेशन इन इण्डिया (1922-27) |
| राय पी.सी. | लाइफ एण्ड टाइम आफ सी.आर.दास. |

वर्मा, रामचन्द्र — भारतीय स्त्रिया श्रीमती महारानी सहिबा की दि पोजीशन आफ वुमन इन इण्डियन लाइफ के आधार पर लिखित गंगा पुसतक माला कार्यालय लखनऊ।

हैवेल,ई.बी — अशार्ट हिस्ट्री आफ इण्डिया (1924)

हाल्डनेस,सर.टी. पीप्लस ऐड प्राब्लम्स आफ इण्डिया (1911)

मजुमदार पी.सी. — लाइफ एण्ड टीचिग्स आफ केशचन्द सेन (1887)

गांधी महात्मा — टू दि स्टूडेन्ट,

लार्ज कर्जन इन इण्डया — वैल्यूक -1 और वैल्यूम-2

मुखर्जी एस.एम. — भारत में शिक्षा

नुरूल्ला सैयद व नायक जे.पी. ए हिस्ट्री आफ एजूकेशन इन इण्डया,

नायक, जे.पी. — एलीमेन्टरी एजूकेशन इन इण्डिया

दि बेसेन्ट स्पिरिट — खण्ड-2, अडयार, 1939

बोस चन्द्र नाथ — हायर एजूकेशन इन इण्डिया

**पत्रिकाएं**

पत्रिका चॉद, आर.आर. सहगल, हिन्दी पत्रिका, चॉद कार्यालय, चन्द्रहोक, इलाहाबाद। (1930-1947)

मनोरमा - हिन्दी पत्रिका, प्रयाग,(1939-1940)

स्त्री दर्पण - इन दि पत्रिका, प्रयाग (1916)

सहेली - हिन्दी मासिक पत्रिका(1934)

इण्डिया टुडे - अंग्रेजी पत्रिका, (1920-60)

इण्डिया सोशल रिफार्मर (1900-1947)

## समाचार पत्र

पायनियर समाचार पत्र - अंग्रेजी (1117-1940)

लीडर समाचार पत्र अंग्रेजी (1917-1960)

दि हिन्दुस्तान टाइम्स - (1930-60)

नवभारत टाइम्स ((1900-1964)

दैनिक जागरण (1930-60)

## रिपोर्ट्स

ए रिपोर्ट आन कम्पलसरी प्राइमरी एजूकेशन इन म्युनिसपिलटीस आफ यू0 पी0 1926-27 गवर्नमेन्ट प्रेस इलाहाबाद (1927)

रिपोर्ट आफ दि फर्स्टआल इण्डिया वुमेन्स कान्फ्रेस आन एजूकेशन रिफार्म, पूना 5-8 जनवरी 1927,

इण्टरिम रिपोर्ट आफ दि इण्डियन स्टेटयूटरी कमीशन रिव्यू आफ ग्रोथ आफ एज्यूकेशन इन ब्रिटिश इण्डिया सितम्बर 1929 कलकत्ता।

गवर्नमेनट आफ इन्डिया एक्ट 1919

जनरल रिपोर्ट आन पब्लिक इन्सट्क्शन ऑफ यू0पी0 आगरा एण्ड अवध 1931-32.

रिपोर्ट आन दी थर्टीन्थ आन इण्डिया एजूकेशन कांन्फेन्स, कलकत्ता, 1937.